श्री सहजानन्द-डायरी

सन्-1959

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

卐

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

सहजानन्द डायरी १९५९

परिशिष्टांश

लेखकः—

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

संपादकः—

महावीरप्रसाद जैन बैंकर्स सदर मेरठ।

प्रकाशकः—

खेमचंद जैन सर्राफ

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ।

उ० प्र०

सहजानन्द डायरी सन् १९५९ ई०

परिशिष्टांश

जनवरी १९५९

अपने आपमें विराजमान सहज परमात्म-तत्त्वके दर्शन बिना अनन्तों वर्ष क्लेशोंमें बीते, वर्ष भी बीते, हम भी बीते। शुद्ध चिद्घन परम ब्रह्मके प्रसादसे आज सुबुद्धि पाई तो इसका सदुपयोग करलो। जितना परम ब्रह्म सहजानन्दमय, चैतन्यघन परमेश्वरकी उपासनामें क्षण जावेगा वह सार्थ समय है और इस दृष्टिसे च्युत होकर जितना क्षण बीतेगा वह व्यर्थ समय है।

कोई मर जाता है तो वह तो दूसरे भवमें जन्म ले लेता है उसको इस भवके समागमके वियोगका कोई दुःख नहीं है और यहांके जिन्दा रहने वाले कुटुम्बके लोग वियोगमें परेशान हो जाते हैं मोहवश निरन्तर दुःखी रहते है। फिर बताओ मरने वाला टोटेमें रहा या जिन्दा रहनेवाला टोटेमें रहा? इस दृष्टिसे तो जिन्दा रहने वाला टोटेमें रहा।

खुद खुदको भूल गया इससे बड़ा गजब और कुछ नहीं हो सकता मगर मोही जीवपर पदार्थोंकी परिणतियोंमें अजब गजबका जजमेंट दिया करते हैं। अपने पर गजब सितम ढाने वालोंको भगवानका सन्देश है कि हे अपनेपर गजब सितम ढाने वालों! मैं भी तुम्हारी मंडलीका मेम्बर था, उस प्राचीन दोस्तीके नाते हम बता रहे हैं कि उस रागमें धोका ही धोका है, संक्लेश ही संक्लेश है, उससे पृथक् होओ अपनेमें आप समावो।

संसार महागहन कानन है। संसार भावमें भूला हुआ प्राणी कहां से कहां पहुँच जाता, कहांसे कहां भटक जाता। इससे पार होनेको यथार्थ असंगता ही कारण है। असंगतासे ही शान्ति संभव है। हे असंगभाव आवो, कृपा करो इस दीनपर, तेरे ही प्रसादसे दीनता दूर हो सकती है। हे असंगभाव ! आवो, कृपा करो इस दीनपर, तेरे ही प्रसादसे सत्य शाश्वत समृद्धि हो सकती है।

संस्कारमें कषायभावका बसना भारी खतरा है। और यह कार्य कर लूं फिर धर्मसाधन करूंगा ऐसी आशा करना भी भारी खतरा है। सुकौशल महाराजकी गृहस्थिति क्या रिटायरके लायक थी ? लोकोंकी दृष्टिमें रिटायर करने लायक नहीं थी। फिर सुकौशल सर्वनिवृत्त क्यों हो गये। सर्वनिवृत्त होकर उनका बिगड़ा कुछ कि सुधरा। जब कल्याणेच्छा हो तभी यत्नमें लगो यही सर्वश्रेष्ठ सम्मति है महात्माओं की।

पूर्वमें जो कर्म कमाये उनके उदयकालमें विषय कषायोंकी विपदा आती, उन्हें किसी प्रकार निकाले, मगर भेद विज्ञानका उपयोग न छोड़ा जावे। गिर गिरकर भी ज्ञानबलका सहारा लेकर उठ उठ जावे। उठनेमें तो स्वभाव मदद देता, गिरनेमें परकी उपाधि प्रवृत्त होती। विषयोंकी ओर झुकाव व क्रोधादिमें वृत्ति इनसे बढ़कर तो कुछ विडम्बना नहीं और स्वभावकी ओर झुकाव व स्वमें वृत्ति इससे बढ़कर कुछ अमृततत्त्व नहीं।

हे मुक्तात्मन् ! मैं भी उसी मार्गसे चलकर आ रहा हूं जिस मा[र्ग] से चलकर आप परम पदमें पहुँचे। केवल अर्ज यह है कि समय सम[य] पर आप मेरे उपयोगासनमें विराजते रहें ताकि विषय कषाय राक्षसोंके में ग्रास न बन जाऊं, बांकी तो मेरी तैयारी है।

फरवरी १९५९

४/५ से ४/३०	प्रवचन	३॥। से ४।	चर्चा
८ से ८/४०	प्रवचन	४। से ४॥।	पाठ
८/१५ से ८/५६	रात प्रवचन		

❀ अहोरात्रचर्या ❀

प्रातः ४ से ४।। तक	जागरण व आत्मकीर्तन	मौन
,, ४।। से ५। तक	आध्यात्मिक स्वाध्याय	मौन
,, ५। से ६। तक	सामायिक व प्रतिक्रमण	मौन
,, ६। से ७।। तक	शौचनिवृत्ति, पर्यटन, देहसेवा	मौन
,, ७।। से ९ तक	देववंदन, भजन श्रवण, प्रवचन, वार्ता	
,, ९ से ९।। तक	पाठन	
,, ९।। से ११ तक	शुद्धि, चर्या, विश्राम	मौन
,, ११ से ११।। ,,	लेखन	
,, ११।। से १२।। ,,	सामायिक, स्तवन	मौन
,, १२। से २।।। ,,	लेखन	मौन
,, २।।। से ३ तक	विश्राम	मौन
,, ३ से ३।।। ,,	शास्त्रसभा में सम्मिलित होना	मौन
,, ३।।। से ४। तक	चर्चा समाधान (लेखन)	मौन
,, ४। से ५ तक	करणानुयोग स्वाध्याय	मौन
,, ५ से ५।। तक	सेवा, विश्राम, पर्यटन	मौन
,, ५।। से ६।। तक	सामायिक	मौन
,, ६।। से ७। तक	आध्यात्मिक पाठ	मौन
,, ७। से ८ तक	प्रथमानु० करणानुयोग स्वाध्याय	मौन
,, ८ से ९ तक	भजन श्रवण, प्रवचन, वार्ता	बोलना
,, ९ से ४ तक	विश्राम, ध्यान, शयन	मौन

नोट :—(१) यदि पद-यात्रा हो तो ६। बजे प्रातः से ८।।। बजे तक ही या पहिले तक, सायं २।।। बजेसे ५।।। बजे तक ही या पहिले तक हो शेष प्रोग्राम पूर्ववत् रहें।

* इनके अतिरिक्त सदा मौन *

प्रातः ८ से ९ तक	५ से ५।। तक सायं
भोजनोपरान्त १५ मिनट	८। से ९। रात्रि
११ से ११।। ,, दुपहर	

सम्यक्त्व सर्वोत्तम सहाय है। सम्यक्त्व पाकर कोई कुछ गिरे उसे भी सम्यक्त्व उठा लेता है। सम्यक्त्व भी छूट जाये तो उसे पुनः भी सम्यक्त्व दिला देनेका दावा करके वह छूटता है। सुस्थित हो अथवा दुःस्थित हो किसी भी वातारणमें हो सम्यक्त्व उसे शरण ही देता है। ॐ नमः सम्यग्दर्शनाय। ॐ तत् सत्।

परके उपयोगसे याने परके रागसे अथवा परविषयक द्वेषसे आत्माका घात ही है याने विकास रुक कर विकार ही बढ़ता है। विकार ही क्लेश है। विकारोंसे कभी कल्याण हुआ है क्या? विकारसे छूट निर्विकल्प परमस्वभावकी और आये तो कल्याण हो। ॐ।

क्या किसीका संग कभी रहा, क्या कोई विकार सिवाय दुःखी करनेके अन्य किसी काम तब या आगे कभी आता है। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या। ब्रह्म सत्यं माया मिथ्या। शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम्।

आत्माका साथी आत्मा है तब अन्यकी आशा तज, आत्मस्वरूप में उपयोगी बन। आत्माको कोई लाभ अन्य वस्तुसे कैसे मिल सकता। कोई भी तो पदार्थ अपने स्वरूपसे बाहर निकलनेके लिये तैयार नहीं।

आत्मतत्त्व ही अनुपम निधि है। तुम अनुपम निधिको मुग्ध जनों में रमकर खोना चाहते हो तो तुम्हें समझाने आवेगा कौन। जड़ पदार्थोंमें रम कर अपनी निधि बरबाद करना चाहते हो तो तुम्हे सावधान करने आवेगा कौन।

प्रियतम! मत बिछुड़ो तुमसे ही बिछुड़ कर तो बरबाद हुआ। अहो यह प्रियतम कहीं गया थौड़े ही था मुझमें ही मेरी भूलसे गुप्त बना रहा। प्रियतम स्वरूपका अब मिलना हुआ, सर्व संकट अब दूर हुए। विकल्प न कर, कोई संकट नहीं।

मार्च १९५९

मैं ज्ञान मात्र हूं, जानना मेरा कार्य है। जिस कार्यको मैं निरपेक्षतया अत्यन्त स्वतन्त्रतासे कर सकता हूं या किया करता हूं वह तो मेरा कार्य है बाकी अन्य कुछ मेरी करतूत नहीं। पर द्रव्यमें कुछ करना तो मुझसे होता नहीं यह तो स्पष्ट बात है, लेकिन राग द्वेष क्रोध आदि अज्ञानभाव जो कि मेरे ही परिणमन हैं उनमें भी मेरी करतूत नहीं क्योंकि वे सब अज्ञानभाव कर्मोदय होनेपर होते हैं व कर्मोदय नहीं होने पर नहीं होते।

"प्रत्येक परमाणु अपनी अपनी सत्तामें ही रहते व परिणमते हैं" ऐसी स्वतन्त्रताकी दृष्टि दिन रातमें कई बार आवे तो इन स्कन्धोंमें राग कम हो जाता, क्योंकि स्कन्ध अपरमार्थ है। परमार्थकी दृष्टि होनेपर अपरमार्थका मोह नहीं रह सकता है।

अज्ञान अथवा मोहका बन्धन ही दुःख है। वस्तुस्वरूपके यथार्थ ज्ञान व उसकी श्रद्धाके बलसे अन्तः प्रकाश पा लेना ही यथार्थ वैभव है, यथार्थ आनन्द है, यथार्थ करतूत है। इस अन्तः प्रकाशके होनेपर दुःख नहीं रहता। तन मन धन सब कुछ न्यौछावर किये जानेपर भी अन्तः प्रकाशका अनुभव हो तो भी सर्वस्वलाभ है। सांसारिक समागम पुण्य पापके अनुकूल होते हैं, उनके विषयोंमें क्यों उपयोग फसाया जाये। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

राग द्वेष होते हैं उन्हें औपाधिक जानूं। विकार मुझमें मेरे कारण अपने आप नहीं होते। मैं अपने आप तो शुद्ध ज्ञायकभाव मात्र हूं। जो मैं निरपेक्ष स्वयं हूं वह तो मैं हूं अन्य सब अनात्मा है।

बिना प्रयोजन समाजमें घरमें झगड़े चलते हैं। पूछो भैया, किस बात पर झगड़े हैं उत्तर मिलता बात तो कुछ है ही नहीं क्या बतायें। लो चलो, अब यहां बतायें—बात यह हुई कि विकार भावका आत्मा माना सो ऐसी मान्यता वाला यह विकार भाव ही उगलता है उससे विवाद हो जाते हैं। समाजमें पूर्ण शान्ति चाहिये तो मौलिक दवा तो यह है कि विकारको आत्मतत्त्व न मानो दूसरेसे कोई विवाद ही नहीं होगा। कुछ लोग हंसेगे कि अच्छा नुखसा बताया इसका तो करना भी कठिन है। किन्तु। भैया क्या बतायें घटिया नुखसेकी तो गारन्टी ही नहीं। बिना गारंटी वाली व्यवस्थामें तो हमारा उपयोग श्रद्धारूपमें नहीं थमता। ॐ तत् सत्।

विनय तो सद्गुणकी दृष्टिसे झुकनेको कहते हैं। मेरे लिये सद्गुणका भंडार तो मैं ही हूं। मैं अपनी ओर झुकूं ता मेरी विनय है। विनय भावके बिना तो मेरा उद्धार हो ही नहीं सकता।

सत्य, सरल, सहज, सरस, शरण, शान्तिसदन स्वस्वरूपके दर्शन करो, उद्धारका सर्व कार्य स्वयं हो जायगा। हे नाथ जो तेरा दर्शन कर लेते हैं उनके सर्व संकट टल जाते हैं इसमें रंच भी तो सन्देह नहीं।

दुनियांमें क्या हो रहा है ऐसा देखनेके लिये तू अमृत (ज्ञान) सरोवरसे बाहर निकलनेका यत्न मत कर। क्या करेगा बाहर देखकर, सैलविलासी और हो जायगा। दुनियाकी ओर न देख, अपनेका देख बुरा है तो बुरा, भला है तो भला देख स्व को ही।

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया, चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।

अप्रेल १९५९

इज्जत किसकी चाही जावे, क्या शरीरकी या जीवकी ? शरीरकी इज्जतमें जीवकी क्या बढ़ाई हुई जीव तो मैं वैसा हूं जैसे कि सब हैं फिर इज्जत मेरी कैसे कहावेगी। जैसे सब मनुष्योंका यदि एक ही नाम हो

तो उस नामकी इज्जतसे किसी एक व्यक्तिकी इज्जत कैसे कहावेगी, इसी प्रकार मैं भी वह हूं, जैसे कि सभी जीव हैं तब मेरी ही इज्जत क्या कहलावेगी।

विकल्पोंका विलय हो व समताका समागम हो यही सर्वोपरि वैभव है।

क्षमता, निर्मलता, दमता, ममता, समता उत्तरोत्तर विशेषतया आनन्दमय हैं।

जीवनके क्षण यों ही गुजर रहे हैं, क्या गल्पमें ही समय गुजर जायेगा फिर क्या करेगा। आत्मसेवामें सावधान होओ। विकल्पोंका परित्याग करो। इसके अर्थ निर्विकल्प चैतन्य स्वरूपकी उपासना करो।

जगतमें सार कुछ भी तो नहीं है। बाह्य पदार्थके स्नेहसे तुम क्या लाभ पा लोगे। अपना बल नष्ट कर रहे, अपनी जिन्दगी व्यर्थ खो रहे। अब आवो अपने समीप अपने चेतन भगवानकी उपासना करो उस पर अब तक बहुत उपद्रव किया। अब क्षमा मांग अपने प्रभुसे। क्षमा चाहते ही तुम्हें क्षमा मिलने लगेगी।

हे सहज भगवन्! तुम पूर्ण हो, सहज हो, आनन्दमय हो। भ्रम छोड़ो, सर्वस्व तुम्हारा तुम्हारे ही पास है। तुम तुम्हारी दृष्टिमें आये तो कृतकृत्य हो अन्यथा नौकरी करते रहना ही फल तेरे हाथ रहेगा।

किसी पर पदार्थकी ओर दृष्टि रहना परकी नौकरी ही तो है। वाह क्या गजबकी नौकरी है। नौकरी भी करो और उसके एवजमें संक्लेशका दण्ड भी भोगो। मिलना जुलना कुछ नहीं। मगर बेवकूफीमें तो यही होता है। यह स्थिति नहीं चाहिये तो अपने सदाके शाश्वत मालिककी सेवामें लग जावो।

आत्मन्! तू कभी नहीं थकेगा। थकनेका काम क्या। ज्ञानका ही तो काम करना है। अपनेमें ही बसकर अपना काम करते चले जायो, न तो इसमें परेशानी है और न थकनेका कोई काम है। बाह्यसे आंख

सोचकर अपनेमें ही करनेकी तो बात है इसके परेशानीका ख्याल ही नहीं है।

हे देव ! तुम मेरे उपयोगसे दूर कभी न होओ। तुम दूर हुए कि विषय कषायके संकटके बादल छा गये। मालूम तो मुझे भी है कि जिसके प्रसादसे आप मुक्तात्मा (परमात्मा) हुए, उसीके प्रसादके अनुरूप स्वोपयोग बनाता है मगर इस समय तो बारबार आपके उपयोगके सहारे बिना काम नहीं चलेगा, गाड़ी आगे नहीं ढिकलेगी।

विषयोंकी वृत्ति विद्या बिना होती है। आत्माकी अनुभूति अविद्याके अभावमें होती है। चैतन्यका चमत्कार चारित्रकी चर्यासे चरित होता है। प्रभुकी प्रभुता प्रभुस्वरूपकी प्रकृष्ट प्रगतिमें प्रकट होती है। सनातन शुद्ध स्वरसनिर्भर सच्चिदानन्दमय स्वकी सेवामें सहजानन्द संचरित होता है। ब्रह्मकी विराधनामें विधिका विधान विधिका विधायक बनता बढ़ता जाता है।

मई १९५९

परिणामोंकी निर्मलता ही सच्चा व्यवसाय है। परिणामकी मलीमसता वर्तने वाले मनुष्यके जो कदाचित् वैभव संचय हो जाता है वह वर्तमान भावका फल नहीं, वह तो पूर्वकृत निर्मलतामें रागवश बद्ध पुण्य कर्मके उदयका फल है, वह तो होता ही, किन्तु उस मनुष्यने मिथ्या विश्वास व मलीमसतासे वर्तकर आगेके लिये क्लेशका बीज बो लिया है। परिणामोंकी निर्मलताका फल अभ्युदय है वह सर्वत्र व सर्वदा होता ही है।

परकी सेवामें अपनी सेवा समझना व अपने प्रत्येक दुःखमें अपना अपराध ही कारण समझना जीवनकी अनोखी उन्नति है। परकी सेवामें तो अपनी सेवा यों होती है कि विषय कषायका अवसर टला, कोई उत्तम भाव व परिणमन अपने ज्ञानमें भी आया। प्रत्येक दुःखमें अपना ही अपराध यों कारण है कि दुःख किसी कलपनारूप ही तो है।

अपने स्वभावसे च्युत होकर परविषयक कल्पनामें लग जाना क्या कम अपराध है ?

मेरा तो यही निज आत्मा शरण है, सर्वस्व है। इसकी सेवा बराबर बने, इसकी उपासनामें ही क्षण बीतें, इसका कभी घात न होवे यहीं चाहता हूं। इस निज प्रभुका घात यही है—परका विकल्प करे, परकी ओर आकर्षण हो, क्षोभ व मोह हो, यह घात ही सर्व विपत्ति है।

हे निज नाथ ! हे ज्ञायक स्वरूप ! हे परमेश्वर ! तू सबसे निराला शुद्ध एवं परिपूर्ण है, सच्चिदानन्द है। जब कभी जो सुख या आनन्द आता वह तेरे से ही आता है। बाह्यसे मुझमें कुछ आता है इस भ्रममें तो अब तक अनन्तकाल खोया। और दुःख भी आता है तो तेरे प्रतिकूल चलनेसे तेरेसे ही आता है। तेरे त्रैकालिक सत्य स्वरूपकी उपासनासे ही विकार दूर होते हैं, कर्म हटते हैं। हे शुद्ध ज्ञायकस्वरूपमय परमेश्वर ! तेरी उपासना ही सर्वोच्च व्यवसाय है।

वह महाभागोंसे भी उच्च है जिसकी अवधारणा विकारोंकी ओर नहीं होना और शुद्ध चैतन्य स्वरूपकी ओर दृष्टि रहती है। इससे महान शाहंशाह कोई नहीं। आत्मा तो अकेला ही अपने भावमात्र है। बाह्य अर्थों से कोई बड़ा नहीं होता। बड़ा होना तो दूर रहा, जरा भी अपने प्रदेशसे आगे सरका नहीं जा सकता। तू अपने भावमात्र है सो भाव ही ऐसे बना जिससे तेरी रक्षा हो। इसके अतिरिक्त न तो कोई जादू है और न कोई टोना है भलाईकी प्राप्तिके लिये। ॐ शुद्धं चिदस्मि, ॐ शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम्।

कल्याणके मार्गको पूरी शक्ति लगाकर अपनाओ। जन्म तो अनंतों हुए उसी सिलसिलेमें यह भी तो जन्म आया है यह भी कुछ ही समय बाद जाना है। जायेगा तो सही, रहेगा तो है नहीं और न रहेगा परमाणुमात्र बाह्यसंग, फिर ऐसा ही क्यों न कर कि उत्तरोत्तर अपने गुणों में समृद्ध होता जाय। सर्वशक्ति लगाकर मात्र अपने शुद्धस्वरूपमें दृष्टि लगाकर रह।

क्या लाया, क्या ले जायेगा। द्रव्यकर्म, सूक्ष्मशरीर व भावकर्म लेकर आया था और इन तीनोंको साथ ले जायेगा। अब मर्जी तुम्हारी जितने चाहे विकल्प करो। अनहोनी होगी कभी नहीं।

जून १९५९

पूर्वमें किये हुए पाप ज्ञान द्वारा क्षीण होते हैं। कर्म कैसे क्षीण होते हैं यह तो जाना नहीं जा सकता किन्तु ज्ञानभाव होनेपर कर्म क्षीण हो जाते हैं ऐसी प्राकृतिक बात है। कर्मका सोच ही क्यों हो। विज्ञानसे देखो– परोपयोग व पराकर्षणभाव रहता है तो आकुलता होती है, परोपयोग व पराकर्षण भाव नहीं रहता है तो स्वयं शान्ति आ जाती है। शान्ति दे कौन जाता है। निमित्तनैमित्तिक भावकी प्राकृतिकताकी सब महिमा है :

मैं शुद्ध ज्ञायक स्वरूप हूं, शाश्वत प्रकाशमान हूं, स्वभावमें विकार नहीं है। स्वभाव चैतन्य स्वरूप है, वही ब्रह्म है, ब्रह्ममें विकार नहीं। शुद्धनयसे ब्रह्म जाना जाता है। शुद्धनयसे जाने हुए ब्रह्ममें नानात्व नहीं है वह चैतन्य स्वरूप मात्र है। स्वरूप न एक होता न अनेक होता; वह तो जो है सो है। यह ब्रह्म सर्वव्यापक है, जब जीव (ब्रह्मव्यक्तियां) ही लोकमें व्यापक हैं, ऐसा कोई लोकमें प्रदेश नहीं जहां जीव न हो तो फिर स्वरूपको सर्वव्यापक माननेमें कौनसी हानि होती है। यह ब्रह्म अपरिणामी है, परिणाम तो विशेष है, विशेषदृष्टिमें है, स्वरूप मात्र दृष्टिमें नहीं।

विज्ञानकी कसौटीपर खरा उतरने वाले वस्तुस्वरूपका परिचय पाकर अब क्या गरीबी रही, अब किस लिये अभिलाषायें हों। हे अभिलाषाओ! अब तुम नष्ट होने वाली हो, धीरे धीरे निकल जाओ। अनंते कालके परिचयके लिहाजसे तुम्हें सूचना दी जा रही है, नहीं तो सूचना की जरूरत तो होती नहीं। मैं सुरक्षित हूं, सब सुरक्षित हैं, किसीके कारण कोई सुरक्षित नहीं, चूंकि सब हैं अतः अपने ही अस्तित्वके कारण सब सुरक्षित हैं। जो मुझमें नहीं वह कुछ हो नहीं सकता, जो मुझमें है वह कहीं जा नहीं सकता। ॐ शुद्धं चिन्मात्रमस्मि।

शरीरादि सभी अन्य द्रव्य मुझसे अत्यन्त भिन्न है। मैं किसी भी पर द्रव्यका कारण नहीं हूं, किसी भी परद्रव्यका कर्त्ता नहीं हूं, किसी भी पर द्रव्यका कराने वाला नहीं हू फिर कोई मेरा कैसे हो सकता है। अनहोतीका होतीके लिये आग्रह करना भी दुःखका मूल है।

मन, वचन, कायका पक्ष ही बुरा पक्ष है। अपने विचारोंको ही आत्मा मानना मनका पक्ष है। अपने वचनोंको ही अपना सर्वस्व मानना वचनपक्ष है। ज्ञानी जीव जिसमें देखता है कि मेरे इस विचारके फलमें दूसरोंका मेरा अहित होगा उस विचारको छोड़ देता है। ज्ञानी जीव जब जानता है कि मेरे इस वचनके आग्रहसे मेरा या परका अहित होगा, उस वचन पक्षको छोड़ देता है।

विषय कषायोंको उपयोगसे हटा लेना, चाहे वह भक्ति, स्मरणके उपयोगके बलसे भी हो, वह भी उत्तम है। विषय कषायोंका फंदा बड़ा कठिन फंदा है। यही संसार है, यही जन्म मरणका बीज है। यही मौलिक विडम्बना है। इस फंदेपर मन वचन कायसे विजय प्राप्त कर लेने वाले जन ही योगी कहलाते हैं।

सर्वे भद्रं हि पश्यन्तु, सर्वे तथ्यं हि पश्यन्तु, सर्वे सत्यं हि पश्यन्तु।
सर्वे स्रोतो हि पश्यन्तु, सर्वे मूलं हि पश्यन्तु, सर्वे नित्यं हि पश्यन्तु।

जुलाई १९५९

मृत्युदिवसका तो कोई अन्दाज भी नहीं कि किस दिन मृत्यु होगी। यदि मृत्यु कभी अचानक हो गई जैसी कि होती ही है तो फिर जिन जिनमें तू उपयोग करके बरबाद हो रहा है ये कोई पदार्थ तेरे साथ जावेंगे क्या या कुछ मदद कर देंगे तुझे क्या? सच तो यह है कि जितना पर पदार्थको विषय करके होने वाला विकल्प है वह अनर्थ है। अपने ही परिणमनसे अपनी बरबादी किये जा रहे हो तो इसकी औषधि अन्य कौन कर सकता है। इसकी औषधि तो खुदके द्वारा निर्विकल्प निज ज्ञायकस्वरूपका आश्रय करना है।

हे आत्मन् ! माप तो कर। बाह्य पदार्थोंका भोग और सनातन केवल स्वरूपका उपयोग इन दोनोंमें अधिक रुचिकर क्या होता है। बता, भोग साधन मिलें तो निजज्ञायक स्वरूपके उपयोगको छोड़ना पसन्द करेगा क्या या निज ज्ञायकस्वरूपका उपयोग होनेको हो तो भोगसाधनका विकल्प छोड़ना पसन्द करेगा। बता, भोगोंमें प्रवृत्ति भोगोंसे निवट कर निजज्ञायकस्वरूपकी भक्ति बनाये रखनेके लिये कर रहा है क्या या निज ज्ञायकस्वरूपका उपयोग भोगसाधन जुटाने या भोगोंमें प्रवृत्ति करनेके लिये कर रहा है। बता, जीवनका अन्तरङ्ग उद्देश्य अखण्ड त्रैकालिक शुद्ध ज्ञायकभावकी उपासना करना बनाया है क्या या भोग विषयोंमें प्रेम करते रहना बनाया है।

हे आत्मन् ! बहुत दुर्लभ शुभ अवसर पाया। ऐसा विज्ञान मिलना कितना दुर्लभ है, जरा अनन्तानन्त संसारी जीवोंपर दृष्टि डाल कर तो अनुमान कर। तुझे पाया हुआ समागम ऐसा फालतू लग रहा है जो उसका सदुपयोग न करके भोगोंमें बरबाद करते हो। भोग धोका है, दुर्गतिका हेतु है।

हे चिदानन्दघन प्रभो ! सच कह रहा हूं अब मेरा उद्देश्य तेरी उपासना करनेका ही चलने लगा है। स्वभावतः स्वरसतः तेरी उपासनाको ही मन करता है। बाह्यमें कहीं भी उपयोग जाय यथाशीघ्र लौट आता है। मुझे किसी से भी कुछ नहीं मिलना है, फिर भी राग बन रहा है सो नाथ ! इसमें मुझे अपनी करतूत या अपना वश नहीं दीखता। ये राग होते हैं, चूंकि योग्यता हमारी है सो कर्म उदयका निमित्त पाकर होना पड़ते हैं। हमारी इस प्रकारकी योग्यता ही न रहे इसके लिये प्रयास करना है, इस पर हमारा वश चलेगा। क्यों रागकी योग्यता बनी हुई है– इसका उत्तर यह है कि रागविकाररहित ज्ञायकस्वरूप मात्र निज ध्रुव परमात्मा की उपासना, अवलम्बन या दर्शन नहीं किया है और न निरन्तर उसका उपयोग दिया है।

हाय कितना अनर्थ अब तक हुआ। जिसका माप किया आर्थिक

दृष्टिसे किया, किसी पुरुषको बड़ा माना तो आर्थिक दृष्टिसे। और तो क्या कभी बड़ा त्यागी भी खोजा या माना तो यह देखकर कि अमुकके भक्त अनेकों श्रीमद्गण हैं। किसीसे किसीको मिलना जुलना है कुछ नहीं अब माप करनेकी पद्धति बदल। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

चुम्बक हो या कर्म हो या कुछ हो, दूसरा दूसरोंको कुछ करता है ऐसा नहीं जचता और जब जो होना होता है उस समय जो सामने हो उस पर निमित्तका आरोप कर दिया जाता है यह भी नहीं जचता। इसका कारण यह है कि पहिली बात तो सिद्धान्तविरुद्ध स्पष्ट ही है, दूसरी बातमें सामने अनेक पदार्थ हैं उनमें इसी पर निमित्तका आरोप हो अन्यपर नहीं, यह व्यवस्था नहीं बनती। अतः यह जचता है कि प्रत्येक पदार्थ अन्यको निमित्त मात्र पाकर स्वयं परिणमते जाते हैं। इस बातको मुख्यतया विभाव परिणमनमें देखना चाहिये। साधारणतया देखनेपर तो स्वभाव-परिणमनमें भी काल द्रव्य निमित्त है। काल द्रव्य ही ऐसा है कि उसके परिणमनमें अन्य निमित्त नहीं है, क्योंकि वह तो परिणमनका साधारण निमित्त है।

यदि यह प्रश्न हो कि निमित्त बनता है या बनाया जाता है तो इस सम्बन्धमें यह समाधान है कि बनाना, चलाना, समझाना, मनाना आदि उपचारका कथन है वास्तवमें ये क्रियायें नहीं हैं।

जुलाई १९५६

ॐ णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। ॐ शुद्धं चिदस्मि। हे आत्म विकास! तेरी उपासना ही शरण है और जिसकी दृष्टिसे स्वभावविकास परिणमन चलता है व जो स्वभावविकासरूप परिणमनमें आता है ऐसे हे शुद्ध आत्मतत्त्व तेरी उपासना ही परम शरण है।

अपनेमें आप प्रकट हैं देखते बने तो देख। आप ही तो स्वयं पारमैश्वर्यमय है देखते बने तो देख। आप ही तो स्वयं परिपूर्ण ज्ञान-ज्योति है देखते बने तो देख। हे अविचल देव! सदा उपयोगमें विराजो इससे ही जीवनकी सफलता है, अन्य सब तो कुछ भी नहीं है मेरे लिये।

हे सहजज्ञानानन्द स्वरूपमय निज नाथ ! तू ही तू ही मेरे उपयोगमें निरन्तर बस। किसी भी पर पदार्थसे मेरा कोई सम्बन्ध ही नहीं, फिर परके विचारमें लाभ क्या, व्यर्थकी बात तो प्रकट ही है। परके प्रति राव भाव बनाकर जो समय बिताये वे व्यर्थ गये।

आजकी स्थितिसे सारी खोज करले। क्या है तेरा? तू अकेला परिणम रहा है या कोई मदद भी कर रहा है। तू अपने स्वरूपमें है, अपने स्वरूप मात्र है, सबसे निराला है, ज्ञानानन्दसे परिपूर्ण है। तुझे सुख तो है ही नहीं, दुख तो तू बनाता फिरता है।

किसी भी परकी दृष्टि करके उपयोगको चित्रित कर डाला और उस आकारमें प्रीति हो गई तो बन्धनमें आनेका बांध डाला। बता लाभ क्या मिलता है परकी दृष्टि करनेमें। ॐ, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम्।

शान तो उनकी है जिनके उपभोगमें अशुद्धता नहीं आती। सन्मान तो उनका ही सत्य है जिनकी दृष्टि परमें नहीं उलझती। दान तो उनका निरन्तर हो रहा है जिनके विकल्पोंका सतत त्याग चल रहा है। आन तो सच्ची उन्होंने पाली जो सबके ज्ञाता रहकर भी स्वरूप-प्रतीतिसे च्युत नहीं होते। सच्चाई जान, आत्मस्वरूप मान, आत्महित ठान।

मेहमान तो सब हैं उनकी दृष्टि करके हैरान क्यों होता। बान अपनी देख और अपनेपर मेहरबान बन। जिस जानपर तू प्रेम करता है वह जान भी तेरी नहीं है, जान व प्राण तो पौद्गलिक हैं तू तो ज्ञानमात्र है।

मेरे यार क्या कार कर रहा है, संसारके पार पहुँचनेका व्यापार कर। चार (आहार, भय, मैथुन, परिग्रह) संज्ञाकी मारसे पीड़ित होकर विकारमें रमकर अपनेपर वार कर रहा है, प्रहार कर रहा है। विचार, अपने को समार, बीता परिचय बिसार। अपने ही स्वरूपमें विहार करके सुधर पावेगा। तेरे लार न कोई आया न कोई जायगा किसके लिये रार बढ़ाता है किसके लिये भार बढ़ाता है कुटेव टार, अपनेको तार। तेरे उद्धारका अन्य कोई प्रकार नहीं है। प्रभजामि शिवं चिदिदं सहजम्।

देख, जो विभाव किये उनमें से तो अब एक भी नहीं है किन्तु उनकी रुचि करके जो संस्कार बना लिया वह दुःख देने को सदा तैयार है। अब जो विभाव हों उनका ज्ञाता रह, उनकी रुचि न कर तो फिर संकट न होंगे।

अगस्त १९५९

हे नाथ ! श्रद्धानमें तो मुझे कोई कसर ही नहीं दीखती फिर आत्मानुष्ठान क्यों नहीं हो पाता। न चाहते हुए भी कषायें होती हैं यह कैसी माया है। धन्य हे निज प्रभो ! तुम्हारी माया भी अजब है ! कहीं तो उपयोगको मायान्ध कर देते हो तो कहीं उपयोगको स्थानभ्रष्ट कर देते हो।

लोक कहते हैं कि ईश्वरकी माया है। ईश्वरकी माया होती होगी यह चाहे स्पष्ट समझमें न आ पावे किन्तु यह तो स्पष्ट दीखता है या समझमें आता है कि ये सारी परिणतियां द्रव्यकी माया हैं। दिखनेमें आने वाले पिण्ड पुद्गल परमाणुवोंकी माया है और क्रोध, मान, माया, लोभ आदि चेतन द्रव्यकी माया है। माया उसकी वह होती है जो जिसका आश्रय करे और निश्चयतः उसकी हो नहीं। क्रोध आदि जीवका आश्रय करते हैं किन्तु जीवमें स्वरसतः नहीं होते वह सब निमित्त-नैमितिक भावका फल है। निमित्त-नैमित्तिक भाव की घटना स्पष्ट तो नहीं दीखती किन्तु विचारमें सही उतरती। परमाणुवोंकी माया वस्तुतः प्रत्येक परमाणुवोंमें है। यह पिण्ड किसी एक परमाणुवोंका नहीं कहा जा सकता और न वस्तुतः अनेक परमाणुवोंका कहा जा सकता और है अनेक परमाणुवोंके आश्रय। अतः यह पिण्ड पुद्गल परमाणुवोंकी माया है। क्रोधादि कषाय भाव भी वस्तुतः जीवके नहीं हैं, फिर भी जीवके ही आश्रय तो हैं। अतः क्रोधादि कषाय भी जीवकी माया है। अब जीवका निमित्त पाकर कायपिण्ड होता है और दृश्यमान पिण्ड किसी न किसी कायके मृत पिण्ड हैं अतः सबको जीवकी माया अथवा ईश्वरकी माया कह देना घटित हो जाता है।

हे आत्मन ! तुम स्वयं ज्ञान व आनन्दरूप ऐश्वर्यके भंडार हो अतः तुममें ईश्वरत्व विराजमान है। अपने ऐश्वर्यका परिचय पावो सब

दरिद्रता इसी से मिटेगी।

ये क्रोधादि भाव आत्मामें कैसे होजाते हैं इसका तो ज्ञायकस्वरूप है? कैसे होजाते हैं यही तो माया है। होजाते हैं और कैसे होजाते हैं इसका दृष्ट पता नहीं पड़ता। जो सच भी हो, झूंठ भी हो वही तो माया है। जो युक्तिपर भी उतरती हो और हैरानीमें भी डालती हो वही तो माया है। जो न एकका काम है, न अनेकका काम है, एकका भी काम है, अनेकका भी काम है वही तो माया है। जो मा है अर्थात् निषेध है वह या है याने तत्त्व है और जो या है वह मा है अर्थात् अन्य सबका निषेध है।

जब तक आत्मतत्त्वका अनुभव नहीं होता मिथ्याचारित्रमें अन्तर नहीं पड़ता। भले ही धर्मके नाम पर संयम व्रतकी प्रवृत्तिमें जीवन व्यतीत करता हो वह तो भी अन्तरङ्गमें मिथ्याचारित्र है और इसी कारण अनुभवशून्य आचारणकर्ता कभी भी बाह्य आचरणसे भी मुक्त हो जाते हैं। वस्तुसत्ताकी स्वतन्त्रताके उपयोगी पुरुष निकटभव्य हैं।

जब जब वस्तुस्वातन्त्र्यके उपयोगसे च्युति हो जाती है अथवा निर्विकल्प अनुभवनसे च्युति हो जाती है, तब तब क्लेश वर्तना प्राकृतिक बात है, वहां यह नहीं है कि बाह्य वस्तुका आश्रय या विषय हुआ इससे बाह्य वस्तुने ही क्लेश दिया। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें परिणमते हैं अतः बाह्य वस्तु कोई भी क्लेश नहीं कर सकता।

देखो देखो अपना अपराध और जुदे हो लो उस अपराधसे, तुम्हें अवश्य शान्ति मिलेगी। क्योंकि जिससे भी जिसे क्लेश होता है वह सब उसके ही अपराधसे होता है। अन्य किसीके अपराधसे अन्यको क्लेश हो ही नहीं सकता।

परकी ओरका आकर्षण ही क्लेश है। परसे कुछ आसकता नहीं, पर तेरे आधीन नहीं, जो तू परके बारे में चाहे वह परमें हो जाय ऐसा नियम नहीं, परका समागम चलता रहे ऐसा होता नहीं, किसी परसे तुम्हारा कोई परिचय नहीं फिर कौनसी गुञ्जाइश है जिससे परकी ओरका

आकर्षण किया जावे? कोई गुंजाइश नहीं, हां अपने अज्ञानभावकी गुंजाइश कह सकते हैं।

हे आत्मन्! हितकार्यकी चर्चा करते करते ही मर जाना होगा क्या? या अच्छे हितकार्य करके मरण होगा। हितकार्यके लिये अपनी शक्ति माफिक कुछ तो बढ़। यदि कुछ किया तो जाय नहीं और हितकार्यकी चर्चामें ही समय गुजारा जावे तो ठठेरेके कबूतर जैसे सुनने सुननेकी आदत बन जायगी तो तिरना कठिन हो जायगा।

वे पुरुष महाभागी हैं जिनके हृदयमें परमात्मा व परमात्मस्वरूपका चिन्तन रहा करता है। वे पुरुष दुर्भागी हैं जिनका हृदय विषयवासनाका बासन बना रहता है। जगतमें अनादिसे चले आरहे प्राणी विशष्ट विशिष्ट भवमें आते और जैसी भी करनी बन जाय वैसी करनी करके चले जाते।

जगतमें मेरा कुछ भी तो नहीं है, कोई भी तो नहीं है, किसकी शर्म करके, किसका लिहाज करके, किससे क्या चाह करके, किसका क्या सोच करके विकल्प किये जा रहे हैं। रे मूर्ख! संकल्प विकल्पसे बढ़करके और कोई मूर्खता है क्या! ज्ञाता द्रष्टा रहनेकी स्थिति ही सच्चा विवेक है, हित है, आनन्द है, परम पद है।

जो तुझमें सहज आ सकता उसकी तो याद नहीं, जो कभी तुझमें आ नहीं सकता उसकी ही वासना है तो बता सद्गति कैसे पावेगा। अहो! दुर्लभ नर जन्म यों ही गमा दिया तो फिर कैसे भला पावेगा।

तू मङ्गलमय है, मङ्गलमय स्वरूपकी आराधना कर, मङ्गल ही होगा।

चरणानुयोगमें बाह्य आश्रयके त्यागकी मुख्यता है। प्रथमानुयोगमें जिन्होंने अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग त्याग किया है उनकी चर्याकावर्णन है। द्रव्यानुयोगमें शुद्ध द्रव्यत्वका वर्णन है जिसकी दृष्टिसे मोह विलयको प्राप्त होता है तथा रागादि अशुद्ध पर्यायें, आकुलतायें विलयको प्राप्त होती हैं। करणानुयोगमें तीनों उपायोंके अनुकूल चलने या प्रतिकूल चलनेसे आत्मामें क्या क्या गुजरती है और आत्मामें कुछ गुजरनेके परिणामी स्वरूप अन्य तत्त्वोंमें भी क्या क्या गुजरती है इसका विवेचन है। चारों

अनुयोग ही जैन सरस्वतीके हाथ हैं, चारों अनुयोगका स्वाध्याय व्यावहारिक जनोंको लाभका कारण है। जब तक ज्ञातास्वरूपकी स्थिति नहीं होती तब तक जीवोंमें व्यावहारिकता ही मिलती है। सर्व आपदाओंकी निवृत्तिका उपाय सहज शुद्ध सहजसिद्ध सहजवृद्ध सहजऋद्ध चैतन्य सामान्यका अवलम्बन है।

हे आत्मन् तू जानता तो रहता ही है। बहुत बहुत तरहकी बातें तूने जानीं, अब एक अपने पतेकी बात भी जानले। एक अपनी बात नहीं समझ पाई तो कहीं जा, कुछ कर, शान्ति तो मिल ही नहीं सकती। सर्व उपाय करि एक निजका मर्म देख।

क्रोध मान माया लोभ इच्छा काम आदि भाव तेरे स्वरसतः तो उत्पन्न नहीं हुए ये तो आगन्तुक भाव हैं, औपाधिक हैं, नैमित्तिक हैं। तू यदि इन रूपोंमय बना रहता हो या तेरे स्वभावतः हों तो इन्हें अपना, इनकी रुचि कर, अन्यथा हों तो उन्हें जैसे हैं वैसे ही अन्तरङ्गसे मानले।

पर वस्तु सब अध्रुव हैं और नैमित्तिक भाव भी सब अध्रुव हैं। अध्रुवकी प्रीति छोड़, ध्रुवमें रुचि कर। ध्रुवकी रुचि करेगा तो ध्रुव पर्याय याने समसदृश पर्याय अर्थात् स्वभावपर्याय प्रकट होगी। तू ध्रुव है, अध्रुव नहीं। अध्रुव तेरे आधीन नहीं, अतः अध्रुवकी प्रीतिमें आकुलता ही हाथ आवेगी।

मोहमें, मिथ्याबुद्धिमें, परसे हित माननेके आशयमें, यह अज्ञानी जीव ज्ञेयको तो स्पष्ट प्रतिभात मानता है और जिस शक्तिके प्रतापसे उसे ज्ञेय प्रतिभात होते हैं उस शक्तिका न भाव है न ध्यान है, न आन है, न बान है, न गान है, न चान है, उसके लिये न अपना कोई बलिदान है, समझमें न उसकी शान है, न उसकी छान है।

जिसने निज सहज आनन्दका रस चखा है उसका न अन्यत्र कहीं ध्यान है, न कहीं टिकनेको थान है। उसने तो विलक्षण अनुपम सत्य आनन्द पा लिया।

अपने विभाव अपनेको अविश्वास्य हो जावें, इस समय यही पुरुषार्थ

करनेको है। हे कषाय, अभिलाष, विचार आदि विभावो! तुम सब आगन्तुक हो, विकार हो, अध्रुव हो। तुम्हारे विश्वासमें, तुम्हारे प्रेममें महान् धोका है जिसके फलमें जन्म मरण संयोग वियोग आधि व्याधि आदि अनेक क्लेश भोगने पड़े हैं। मैं अध्रुव नहीं, ध्रुव हूं, सनातन ज्ञायकमात्र हूं।

सितम्बर १६५६

[धर्मप्रेमी संगीतज्ञ बालकोंके आग्रहपर नई तर्जमें रचित]

मैं ध्यान लगाऊं कहां, कुछ भी ना सार यहां, मायामयी सारा जहां ॥टेक

ओ ज्ञान वाले खुदको भुलाके, सुख पाना मुश्किल मनको लुभाके।
राग बुरी गतिकी निशां। मैं ध्यान० ॥ १ ॥

खुद ही तो मैं हूं आनन्दका घर, बस जाऊं खुदमें फिर है कहां डर।
स्वाश्रित सुखमय हूं यहां। मैं ध्यान० ॥ २ ॥

नित्य निरञ्जन शुद्ध सनातन, ज्ञान-सुधामय खुद हूं मैं पावन।
शान्त सदा शिवमय महां। मैं ध्यान० ॥ ३ ॥

सब द्रव्योंमें सबसे आला, सबका ज्ञाता सबसे निराला।
स्वात्म भजे होगी रिहां। मैं ध्यान० ॥ ४ ॥

सहजानन्द स्वरस शुचि पीके, अथिर विषय क्या लागे नीके।
दर्द निदां सारा जहां। मैं ध्यान० ॥ ५ ॥

रोग तो हो मोहनको और इलाज किया जाय सोहनका, तो बोलो भैया विवेक है या बेवकूफी? इसी तरह रागद्वेष मोहका रोग तो है आत्माको और इलाज किया जाय देह अथवा इन्द्रियोंका तो बोलो भैया यह भी विवेक है या बेवकूफी? अरे जिसको रोग है उसका इलाज करो; नादान मत बनो।

ज्ञायकस्वरूपका अधिकाधिक उपयोग कर। कभी भी अचानक मौत आवेगी, यदि अपना काम न कर पाया तो फिर पता नहीं तू क्या बनेगा, कैसी गति तेरी होगी। यदि असंज्ञी हो गये तो किया कराया सब व्यर्थ हो जायगा, और तब बड़ी ही विडम्बनायें भोगते रहोगे।

तेरे से बाहर कहीं भी तो तेरा कुछ नहीं है। तेरा आनन्द, तेरा ज्ञान तेरे में ही है। तू अपनेको भूलकर बाहर कहीं कुछ खोज उसमें न तो कुछ मिलेगा और न कुछ भला होगा। यह भी कहनेकी ही बात है कि कोई बाहरमें भी कुछ खोजता है। बाहर कोई कुछ खोज ही नहीं सकता। जो कोई कुछ खोजता है वह अपनेको ही खोजता है। तू अपनेको ही सत्य-स्वरूपसे खोज ता कि शान्ति लाभ हो।

[धर्मप्रेमी संगीज्ञ भाइयोंके आग्रहपर नई तर्जमें रचित]

मेरी दृष्टिमें नाथ विराजा, मेरे सिद्ध हुए सब काजा, सारी बाधायें गईं, शुद्ध परिणतियां भईं। मेरी दृष्टि में नाथ विराजा ॥ टेक ॥
तू न था दृष्टिमें सो भ्रमा लोकमें, जड़से नेहा लगा रच रहा शोकमें।
जबसे आया तू नजर, भागे सारे ही फिकर। मेरे ज्ञानमें तू ही समाजा
मेरी दृष्टिमें नाथ विराजा, मेरे सिद्ध हुए सब काजा ॥१॥
क्रोध मद लोभ छल रञ्च मुझमें नहीं, शुद्ध ही वर्तता सर्वदा तू यहीं।
नहीं देखेसे मिले, ज्ञानदृष्टिसे मिले। जगका तारनहार जहाजा।
मेरी दृ० ॥ २ ॥
रूप रस गंध पर्शसे परे अज अमर, शुद्ध ज्ञायकस्वरूप चेतनाप्रकाशभर।
मेरा सहजानन्द जगा जा। मेरी दृ० ॥ ३ ॥

निर्विकल्प परमसमाधिभावमें स्थित होनेके लिये इस प्रकार उपाय हैं-

(१) मेरेमें जो अस्थिर-अस्वभाव भाव हैं वे मेरे नहीं हैं, मैं तो स्थिर, एक, शास्वत, चैतन्यस्वरूप हूं ऐसी भावना करना।

(२) मैं चेतन पदार्थ हूं, निरन्तर परिणमता रहता हूं, परिणमन ही कर्तृत्व है सो मैं अपनेको करता हूं अपने द्वारा करता हूं, अपने लिये करता हूं, अपनेमें करता हूं ऐसी निश्चय दृष्टिकी भावना करना।

(३) मैं पर्यायभेद व शक्तिभेदसे परे अखंड चैतन्यस्वभाव मात्र हूं, ध्रुव हूं, सहज आनन्दमय हूं ऐसी भावना होना।

(४) तीन लोक इतना बड़ा (३४३ घन राजू प्रमाण) है, उसमें यह परिचित जगह तो न कुछ है इसका क्या उपयोग करना, उपयोगसे सर्व पर

हटो ऐसे वितर्कके साथ उपयोगको भाररहित कर देना।

(५) तीन काल अनादि अनन्त है उसके सामने यह जीवन काल क्या है अथवा मोही जीवों द्वारा स्वार्थवश कभी कभी जितने समय झूंठी तूती गाई जा सके वह काल कितना है, कुछ भी तो हिसाबमें नहीं बैठता उतने कालकी गप्पोंमें उपयोग लगाकर क्यों यह सुयोग बरबाद किया जावे ऐसे वितर्कके साथ उपयोगको भार रहित कर देना।

(६) कुछ भी विचारका व्यायाम न करके उपयोगको विश्राममें रहने देना

(७) विभाव भावोंका ज्ञाता रहना, खेल देखनेवाला रहना, विभाव मेरी स्वभावकलासे नहीं उठा किन्तु निमित्त पाकर होना ही पड़ा ऐसे दर्शक रहना। टिपिन बक्स भोजनपूर्ण यदि साथ हो तो गृहस्थको सफरमें न चिन्ता रहती, न क्लेश रहता। जब चाहो तब भोजन निकाल लो, खालो और सन्तुष्ट हो लो। यह तो लौकिक बात है। शुद्ध ज्ञायकस्वरूप की प्रतीतिरूप टिपिनबक्स साथ हो तो न कोई चिन्ता रहती और न कोई क्लेश रहता। जब चाहो निज ज्ञायकस्वरूपपर दृष्टि दो, दुःख मिटालो। टिपिनबक्स तो सफरमें चाहे कहीं भूल जाय तो दुःखी, कहो तुम्हारा टिपिनबक्स प्लेटफार्मपर रहजाय और आप रेलमें बैठे और गाड़ी छूटजाय तो क्या करो लेकिन, निज ज्ञायकस्वरूपकी प्रतीति कहां छूटकर रह जायगी। यह अलौकिक टिपिन बक्स उसके साथ है जब चाहे दृष्टि करलो और क्लेश मिटा लो। ज्ञायकस्वरूप तो सबके है ही, जो दृष्टि करले वह क्लेशमुक्त हो जाता है। क्लेशसे छूटनेका उपाय मात्र चित्स्वभावकी दृष्टि है।

सर्व पदार्थोंमें सार पदार्थ आत्मा है क्योंकि वह चेतक है। चेतक ज्ञाता व द्रष्टा होता है। ज्ञातृत्वशक्तिके रूपमें आत्माका सत्य परिचय होता है। आत्माके इस चैतन्य तत्त्वकी ओर उपयोग रख लेना ही अध्यात्म योगका निशाना है। इसकी दृष्टिसे ही जीव ब्रह्मज्ञानी कहलाते हैं, इसकी दृष्टिसे ही जीव सहज आनन्द पाते हैं, इसकी दृष्टिसे ही जीव संसारके क्लेशोंसे छुटकारा पाते हैं। ॐ अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि।

सदामुक्तके ध्यानसे, आश्रयसे ही जीव कर्ममुक्त हुए। कर्ममुक्त होना साध्य है वह कर्ममुक्तके आश्रयके साधनसे साध्य नहीं होता किन्तु सदामुक्तके आश्रयके साधनसे साध्य होता है। सदामुक्त चैतन्यस्वरूप है। यही स्रष्टा, ब्रह्म, सदाशिव, अद्वैत आदि शब्दोंसे कहा जाता है।

धर्मका पालन यह है कि जो पदार्थ जिस रूपसे है उस स्वरूपके विरुद्ध उन्हें न जानकर उसकी स्वतन्त्रताकी प्रतीति करना इसी प्रकार जानना। तथा अधर्म मार्गपर चलना यह है कि पदार्थोंका सत्त्व स्वतन्त्र स्वतन्त्र न होकर परस्पर एक दूसरेका स्वामी एक दूसरेका कर्ता, एक दूसरे का भोक्ता जानकर तथा इसी विपरीतमान्यताके कारण विकल्प करना, आकुलता करना सो सब अधर्म है।

धर्म ही शान्तिका हेतु है और अधर्म ही आकुलता (अशान्ति) का हेतु है। "धर्म करना है" ऐसा कहने सुनने विचार करनेपर यह भाव लाना चाहिये कि सब पदार्थोंको स्वतन्त्र स्वतन्त्र जानते रहना है। ऐसी ही मेरी दृष्टि रहे इसके ही अर्थ धर्म मार्गसे चलकर जो परम आनन्दमयपद में पहुँचे हैं उनके गुण गाये जाते हैं। ऐसी ही दृष्टिके यत्नमें रहने वाले अन्तरात्मावोंके सत्संगमें रहा जाता है, विषय कषायके अपोषक व्रत तप आदि क्रियावोंमें लगा जाता है।

सम्यक्ज्ञान ही धर्म है उसका पालन करना सर्वोच्च व्यवसाय है। कुछ भी होओ, परन्तु एक निज ज्ञायक स्वभावकी दृष्टि चलित मत होओ ॐ ज्ञानमयाय परमात्मने नमः। "शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम्॥

किसी भी स्थानपर जानेपर वहां की समाज पूछे कि आप कितने दिन तक रहेंगे तो उत्तर यही होना चाहिये कि जितने दिन होसकेगा उतने दिन रहेंगे। निश्चित तिथि बता देनेपर फिर दिन बितानेमें संक्लेश हो सकता है। एक ओर तो यह बात है अब दूसरी ओर देखो-निश्चित दिन बताने पर लोगोंमें प्रचार होता है सब एकत्रित होते हैं, व्यवस्था ठीक रहती है, अनुकूल साधन मिलते हैं ऐसी अनेक सुविधायें हैं, इन दो बातोंमें यदि कल्याण व अध्यात्म मार्गकी दृष्टिसे देखा जावे तो पहली ही बात सही

है। यद्यपि दिन व समयके बहुत पहिले निर्णीत कर दिये जानेसे लोगों में चहल पहल अच्छी हो जाती है तो भी ऐसे प्रोग्रामके बनाये जानेसे वह मनुस्य केवल यश चाहका पात्र रह जाता है। हां, यदि कोई प्रोग्रामोंसे कोई सरोकार न रखता हो और सर्वत्र अध्यात्मका ही अवलोकन करता रहता हो वह किसी अन्य धर्मात्मासे कहदे कि जहां तुम कहो वहां चल देंगे तो इसमें कुछ बात रह तो सकती है किन्तु इतना निरपेक्ष है कौन और निरपेक्ष है तो उस एकको भी अपेक्षा क्यों की।

उक्त प्रसंगमें निष्कर्ष अपने लिये यह निकालो कि मुखसे कुछ मत कहो कि हम इतने दिन रह जावेंगे जितने दिन असंक्लेशसे निभे उतने दिन रहना। यह एक जाने आनेके सम्बन्धमें अध्यात्मप्रियकी उत्तम चर्या है। इस चर्यामें लोगोंकी चहल पहल अधिक नहीं होगी। न हो, "लोगों की मान्यतासे तुम्हे क्या मिलेगा, मात्र विकल्पका ही फल (आकुलता) भोगोगे" ऐसा जानकर इच्छाविहीन होना, यही कार्यकारी है।

प्रिय आत्मन् करना है अपना सत्य काम अर्थात ज्ञाता द्रष्टा रहना है। इससे आगे कुछ भी किया, विकल्प किया तो उसका फल संसार भ्रमण है, संसार भ्रमणके मार्गसे अपनेको निवृत्त कर।

लोग स्वतन्त्रता या आरामकी रक्षाके लिये अनेक मित्रों, बन्धुवों नौकरोंका संग्रह करते हैं किन्तु होता है फल उल्टा याने परसंग्रहमें परतन्त्रतासे क्लेश व श्रम अधिक बढ़ जाता है। जितना अधिक एकाकी पन रह जायेगा उतनी ही विशेष स्वतन्त्रता एवं विश्रान्ति व शान्ति प्राप्त की जा सकेगी। कितना ही कोई प्रेमी हो उसके संसर्गसे शान्तिकी आशा करना व्यर्थ है। परका सम्बन्ध अनाकुलताका कारण कभी नहीं हो सकता।

जगतमें सर्वत्र दुःख है। दुःख भी क्या है, जितनी जितनी जहां इच्छा है उतना उतना वहां दुःख है। दुःख मेटनेके लिये परका संग्रह विग्रह आवश्यक नहीं, किन्तु शुद्ध स्वरूपके ज्ञानके बलसे इच्छाओंसे निवृत्त हो लेना आवश्यक है। ॐ तत् सत्।

सर्व परोपयोगसे निवृत होकर सहज प्राप्त होनेवाली निज अनुभूति के समक्ष समस्त तीनों लोकोंका वैभव न कुछ चीज है। जगतमें बड़े बड़े वैभववान देखे जाते हैं, देवोंमें इन्द्रकी मनुष्योंमें चक्रवर्तीकी विभूति सर्वाधिक है, आज भी अरब-पति देखे जाते हैं, किन्तु वह सब न कुछ चीज है, सम्यग्ज्ञान ही सत्य ज्ञान व शान्तिका कारण है।

अक्टूबर सन् १९५९

[धर्मप्रेमी संगीतज्ञ भाईयोंके आग्रहपर नई तर्जमें रचित]

गुंजा विश्व था वीरदेवकी दिव्य ध्वनिकी धारोंसे।
ज्ञान मार्ग संचार हुआ था संतोंके अवतारोंसे॥
किन्तु आज कहना है खुद मेव व सहधर्मा प्यारोंसे।
आत्म हितैषी पक्षरहित अविचारोंसे सविचारोंसे।

❀　　❀　　❀

चिदानन्दमय अपने प्रभुको भूल गया कुविचारोंसे।
अपने आपकी भूलमें तड़फा कष्टोंकी भरमारोंसे। टेक
ज्ञान और आनन्द शक्तिका पुंज स्वयं ऐश्वर्य यहां,
देह विभव जड़ इष्ट मानकर भूला भटका यहां वहां।
अपने ही अपने स्वरूपमें परिणमते सब द्रव्य यहां,
फिर बतलावो कौन किसीका कर सकता है कार्य यहां।
दूर हटो अब मिथ्या जालों मिथ्याचार विचारोंसे,
अपने आपकी०। चिदानन्द०, अपने आप०। ॥
ज्ञान और आनन्द भावका अपना अनुभव करते हैं,
हुआ ज्ञान आनन्द अन्यसे मान भटकते फिरते हैं।
नहीं ज्ञान आनन्द अन्यमें मेरा फिर कैसे आये,
लेश ज्ञान आनन्द न जड़में उनसे फिर कैसे आये।
कहदो सच्ची बात कुटुमके सारे पहरेदारोंसे,
अपने०। चिदानन्द०, अपने आप० ॥ २ ॥
अपना ही उत्पाद करें सब अपना ही व्यय करते हैं,

अपनी ही सब पर्यायोंमें खुद ही खुद ही रहते हैं।
रंच किसीका गुण या पर्यय नहीं अन्यमें जा पाता,
कोई मुझको कैसे सुख दुख या मैं परको दे पाता।
ज्ञानामृत अब पियो न झुलसो विभ्रमके अंगारोंसे,
अपने०। चिदानन्द०, अपने०॥ ३॥

बाह्य विषय नहिं सुख दुख देते इनका सत्त्व निराला है,
द्रव्य कर्म भी मुझसे बाहर अपनी परिणति वाला है।
परका आश्रय करके खुदको कर्म उदयमें डाला है,
विषय कषायों रूप वर्तकर किया स्वयंको काला है।
बचो लोभ छल क्रोध कपट निजके विभाव गद्दारोंसे।
अपने०। चिदानन्द०, अपने०॥ ४॥

छोड़ो परका गीत राग अब अपने प्रभुके गुण गावो,
शुद्ध सनातन नित्य निरञ्जन ज्ञान ज्योति मनमें भावो।
रहता सदा समीप स्वयं इसके आश्रयसे हित पावो,
सहजानन्द परम ज्योतिमय सार परम पदमें आवो।
सदा मुक्त परमेश्वर आवो भक्तिके इन द्वारोंसे।
अपने०। चिदानन्द०, अपने०॥ ५॥

जगतमें अनन्तानन्त चेतन अचेतन पदार्थ हैं उनमें से एक एक आप हम सब मनुष्य पर्यायमें आये हुए हैं। इस आत्माका किसी अन्य पदार्थके साथ स्वस्वामित्व सम्बन्ध नहीं है। सब अपने अपने परिणामसे परिणम रहे हैं। आत्मा तो इस सब लीलाका ज्ञाता द्रष्टा रहकर अभेद चैतन्यमात्र निज आत्मतत्त्वमें उपयोग करे इससे बढ़कर त्रिलोकमें अन्य कोई वैभव नहीं। इस चिदानन्द तत्त्वके अनुभवसे उत्पन्न हुए सहज आनन्दका ऐसा चमत्कार है कि आकुलतायें सब दूर भाग जाती हैं, कर्म-बन्धन स्वयं झड़ने लगते हैं। अन्तमें यह समाधिभाव ऐसे परमपद प्राप्त होनेका कारण बन जाता है जिस पदके पानेके बाद कभी आकुलताका लोभ तक नहीं आ सकता, सदाके लिये संसार परिभ्रमण समाप्त हो जाता है इसके उपयोग

में प्रयत्नशील रहें यही मनुष्यभवमें करनेका सच्चा व्यवसाय है।

निश्चयनय व व्यवहारनयके समान नाम

निश्चयनय	व्यवहारनय
परमार्थ	माया
निष्प्रपञ्च	सप्रपञ्च
पराविद्या	अपराविद्या
विद्या	अविद्या
अनपेक्षित	सापेक्षित

(धर्म प्रेमी संगीतज्ञ भाईयोंके आग्रहपर नई तर्जमें रचित)

भैया मेरे नरभव विषयोंमें न गमाना,
भैया मेरे अपने स्वरूपको न भुलाना।
देखो निज दृष्टी निभाना-निभाना। भैया ०॥ टेक ॥

ये मन ये विज्ञान निराला, सब गतियोंमें सबसे आला।
मुक्तिके मन्दिरके द्वारों, का यह खोले बन्धन ताला।
अपनेमें आपहिं सुहाना-सुहाना। भैया० ॥ १ ॥

निज परिचय बिन जगमें डोले, अब स्वरूप रच अघमल धोले।
सबके ज्ञाता सबसे न्यारे, निज ज्ञायकतामें रत होले।
जानों ये सारा विराना-विराना। भैया मेरे० ॥ २ ॥

जब लग रोग मरण नहीं आये, शान्ति सुधारस पीता जाये।
सहजानन्द स्वरूप न भूलो, सारा ये अवसर निल जाये।
शिव पथमें कदम बढ़ाना-बढ़ाना। भैया मेरे० ॥ ३ ॥

हे आत्मन्! उपयोगका काम तो जानते रहनेका बना ही रहता है चाहे किसीको जाना करे। ठीक है, लेकिन लाभ अलाभ भी तो विचारो किस पदार्थके उपयोगमें तो तेरा लाभ है और किस पदार्थके उपयोगमें तेरा अलाभ है अथवा कैसे उपयोगमें तेरा लाभ है और कैसे उपयोगमें अलाभ

है, यह बात अनेकों उपयोग करतेपर समझमें आ ही जाती है। परका उपयोग करो अपना उपयोग करो, इष्ट अनिष्ट कल्पना रहित उपयोग करो, इष्ट अनिष्ट कल्पना सहित उपयोग करो ; इन सब उपयोगोंके करनेमें जो आपपर वीतती है वह क्या समझमें नहीं आ सकती। सब समझमें आता, करके देखो और निर्णय करो किसके उपयोगमें शान्ति है और कैसे उपयोगमें शान्ति है।

बाह्य पदार्थोंके संचयके लिये चतुराई सीखी, चतुराई की, तो क्या किया। इस चतुराईमें हानि ही हानि है। कर्म बन्ध हो, संक्लेश हो, कामाचार हो, खुदगर्जी हो, बड़ोंका अपमान हो, दूसरोंको क्लेश हो ; स्वरूपका विस्मरण हो इत्यादि अनेकों हानियां हैं। आत्म दृष्टीके कार्यमें लोगोंको तो बड़प्पन नहीं दीखता किन्तु लाभ व बड़प्पन सभी कुछ फायदा है इसमें। शुद्ध हूं, बुद्ध हूं, नित्य हूं, निरंञ्जन हूं, ज्ञानानन्दस्वभावी हूं। मेरा सर्वस्व मैं हूं। कर्त्ता कर्म करण संप्रदान अपादान व अधिकरण मेरा मैं हूं। प्रत्येक पदार्थ स्वयं सत् है स्वयं परिणमनशील है। किसी भी पदार्थका स्वरूप अन्य किसी पदार्थमें कभी भी छुआ हुआ भी नहीं है। मेरा जगतमें कौन है। मेरा जगतमें शरण कौन है। मेरा जगतमें हित कर सकने वाला कौन है, मेरा जगतमें बात पूंछ सकने वाला कौन है। सब अपने अपने स्वरूपमें ही परिणमते रहने वाले हैं। मै चिन्मात्र हूं।

ॐ शुद्धं चिदस्मि। शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्म तत्त्वक।

कुछ समय जंगलमें या निर्जन एकान्तमें अपनेको बिलकुल अकेला पाना औप वहां अपने आपमें आपको पाना इससे बढ़कर उत्तम कार्यक्रम अपना कुछ नहीं हो सकता है। किसी भी पर पदार्थके उपयोगसे आत्मामें लाभ क्या होता है। आत्मामें लाभ तो नहीं होता किन्तु लौकिक जन यह कह देंगे कि इससे लौकिक परिचय व जीवनका आराम व इज्जत मिल जाता है। यह परिचय व आराम अथवा इज्जत क्या अनाकुलता पैदा करते हैं या कर्मबन्ध हटाते हैं किस प्रकार हित करते हैं इस पृच्छाका कोई समाधान ऐसा नहीं है जिससे परके उपयोगके लिये प्रेरणा मिले।

ज्ञानका काम जानना है। पदार्थ जाननेमें आते ही हैं। जाननेके साथ यह जीव उन्हें हितरूप या अहितरूप या मेरे तेरे रूप समझता है। अब तो आवश्यकता इस बातकी है कि जो पदार्थ जाननेमें आये, आने दो, साथ ही इतना उसमें और सोचलो कि इसका काम इसही में समाप्त है। इससे बाहर इसका कोई परिणमन नहीं, कोई असर नहीं, कोई कुछ नहीं, स्वयं भी तो अधिकाधिक जाननेमें आता है जानो और जाननेके लाभके साथ उसमें इतना और सोच लो "मेरा काम मेरा सर्वस्व इस मेरेमें ही समाप्त है, इससे बाहर मेरा कोई परिणमन नहीं, मेरा कोई असर नहीं, मेरा कोई कुछ नहीं। यदि जानने जाननेकी ही स्थिति रहे तो वहां कुछ सोचने की आवश्यकता ही नहीं।

"मैं शरीर से न्यारा हूं ज्ञानमात्र हूं, मैं शरीरसे न्यारा ज्ञानमात्र हूं" इस भावनाका भी अद्भुत चमत्कार है इसका भी उपयोग लो। जीवकी शान्ति जीवका स्वभाव भाव है उसके लिये हैरानगी जरा भी न समझो, केवल वस्तुस्वरूपके विरुद्ध कल्पनायें न करो इतने ही पुरुषार्थसे तुम्हारा सर्वस्व वैभव तुम्हें मिलजावेगा। ॐ तत् सत् परमात्मने नमः। ॐ शुद्धं चिदस्मि। ॐ नमः सिद्धाय।

किसी भी प्रकार जीव शुद्ध ज्ञायकस्वरूपका अनुभव करे इसके लिये उपादानका वर्णन है इसीके लिये निमित्तका वर्णन है। उपादानकी स्वतन्त्रता समझे बिना निमित्तकी बात माननेसे सिद्धि नहीं और निमित्त की यथार्थता जाने बिना मात्र उपादानकी कला माननेसे सिद्धि नहीं, क्योंकि यथार्थता तो यह है कि निमित्तके सान्निध्यमें उपादान अपनी कलासे विशेष विशेषरूप परिणमता जाता है। ध्रुव ज्ञायकस्वरूप निज तत्त्वकी दृष्टि करना आत्मधर्मपालन है। इसके लिये यथार्थ ज्ञानके बलसे अन्तः विवेकाभ्यास करना होगा जिससे विषय, कषाय, विचार आदि बिभाव आगन्तुक, नैमित्तिक; अध्रुव, विचार, अस्वभावभाव, आदि सब धोकारूप दिखने लगे। विभावोंकी प्रीति हटे विना मोह अथवा घर आदि बाह्य परिकर छोड़ा नहीं जा सकता, विभावोंकी प्रीति हटे बिना

सत्य आनन्दका परिचय पाया नहीं जा सकता व सत्य आनन्दके पदमें स्थिर रहा नहीं जा सकता। अतः थोड़ा नही, किन्तु निरन्तर विभावका उपयोग दूर कर निर्विकल्प सहज अनाकुलतारूप अमृतके पानका उद्यम करना है। इस समयसारका अनुभव ही सार है अन्य सारा लोकवैभव भी असार है। ॐ निर्नाम शुद्धं चिदस्मि। ॐ ॐ ॐ ॐ ॥

अहो धन्य है यह आत्माका अनुभव और धन्य है इस सहज आनन्दका परिणमन। आत्मा ज्ञानानन्दघन है। स्वसे बाहर हित देखता आनन्द खोजना महान् अज्ञान है इसके ही परिणाममें तो संसारपरिभ्रमण है। हे आत्मन्! किसी परसे कुछ आशा करना सबसे बुरा काम है। अपनेको देख, अपनेमें विश्राम पा, असंगभावमें ही मग्न रह।

मुझे किसी भी परकी आशा नहीं है, जो जहां है वह वहीं पड़ा रहो। शान्तिके मार्गका मर्म तो इतना ही है किसी भी पर पदार्थकी आशा न रहे, जो सहज समागम हो उसीमें अपना हितकर भावकी रक्षा करके निपट ले।

मेरा कार्य मेरेमें ही समाप्त है मेरेसे बाहर मेरा कुछ नहीं, तेरा कार्य तेरेमें समाप्त है तेरेसे बाहर तेरा कुछ नहीं, इसका कार्य इसमें समाप्त है इससे बाहर इसका कुछ नहीं, उसका कार्य उसमें ही समाप्त है उससे बाहर उसका कुछ नहीं, जिसका कार्य जिसमें ही समाप्त है जिससे बाहर जिसका कुछ भी नहीं, हर एकका कार्य हर एकमें समाप्त है हर एकसे बाहर हरएकका कुछ नहीं, आपका कार्य आपमें समाप्त है आपसे बाहर आपका कुछ नहीं, अमुकका कार्य अमुकमें ही समाप्त है अमुकसे बाहर अमुकका कुछ नहीं।

प्रत्येक पदार्थ अपने अस्तित्वके किलेमें सुरक्षित है, किसीका कोई कुछ बिगाड़ सकता नहीं, कुछ कर सकता नहीं। सर्व स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रताके बलसे काल्पनिक परतन्त्रता मिटकर पूर्णतया स्वतन्त्रता हो जाती है।

नौम्बर १६५६

मैं शरीरसे बिलकुल पृथक् होजाऊं। शरीर मेरा वैभव नहीं है किन्तु विडम्बना है। मैं शरीरसे अब भी पृथक् हूं, किन्तु उपयोग निजमें बसकर शरीरकी ओर अथवा शरीर सम्बन्धके कारण किसी प्रकार सम्बन्धित अन्य पदार्थोंकी ओर जाता है इसमें ही सारा कष्ट हो जाता है। यदि शरीरसे बिलकुल भिन्न होजाऊं तो एक तो आधार न रहा दूसरे पृथक् होनेपर पूर्ण निर्मलता ही रहती है अतः बाह्यमें उपयोग भ्रमनेका अवसर ही नहीं आ पाता फिर आनन्द ही आनन्द है। मैं शरीरसे बिलकुल पृथक् होजाऊं। शरीर मेरा वैभव नहीं है, किन्तु विडम्बना है।

मैं अपने आपमें गुप्त होजाऊं, बाहर जहां जो कुछ होना हो होओ उससे मेरा क्या। बाहर अर्थात अन्य पदार्थोंमें जो कुछ होता है उससे अब भी मेरा न तो कुछ होता है और न कुछ सम्बन्ध है, किन्तु अपने आपमें सुदृढ़ स्थित न रह कर उपयोग द्वारा बाहर देखता हूं जिसमें सारा कष्ट ही कष्ट है। यदि मैं अपने आपमें गुप्त हो जाऊं बाहर झांकूं ही नहीं तो उपयोगका विषय पर पदार्थ न रहनेसे आकुलताको अवसर ही कहां हो सकता है ? फिर तो आनन्द ही आनन्द है। मैं अपने आपमें गुप्त हो जाऊं, बाहर जहां जो कुछ होना हो होओ, उससे मेरा क्या।

हे आत्मन् ! हैरान मत होओ, परेशान मत होओ। प्रत्येक पदार्थ स्वयं सत् है। सत् का स्वरूप ही ऐसा है कि वह अपने आपमें परिपूर्ण रहता है और सतत परिणमनशील है। वह रहता है और परिणमता रहता है। किसी भी सत्में तुम्हारा तो क्या, बड़ेसे बड़े पुण्यशालीका अथवा परमात्माका भी अधिकार नहीं कि पर सत्में कुछ कर दे। परमात्मा परम हैं वे अपने अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त आनन्द व अनन्त शक्तिके कारण परम हैं, आराध्य हैं, किन्तु किसी अन्य पदार्थमें कुछ कर देनेका उनका काम नहीं है, अन्यथा परमात्मा भी दुःखी होजायेंगे व परमात्मा मिट जावेंगे। फिर तू सोचता ही क्या है ? हे आत्मन् ! हैरान

मत होओ, परेशान मत होओ। ॐ शान्तिः, ॐ तत् सत्। ॐ शान्तिः, ॐ तत् सत्। ॐ शान्तिः, ॐ तत् सत्।

धैर्य कहते किसे हैं? धीं राति ददाति इति धीरः धीरस्य भावः धैर्यम्। जो बुद्धिको, ज्ञानको दे उस भावको धैर्य कहते हैं। आरामके वातावरणमें तो प्रायः सभी धैर्य प्रदर्शित कर देते हैं किन्तु प्रतिकूल वृत्त उपस्थित होने पर धैर्य रखा जा सके तो वह धैर्य ही वास्तवमें प्रशंसाके योग्य है।

प्रतिकूल प्रवृत्ति करने वालेपर रोष न आये प्रत्युत उसका भी हित ही चाहे ऐसे परिणामके बिना धैर्य धारण अति कठिन है। प्रतिकूल प्रवृत्ति करने वालेपर रोष न आये प्रत्युत उसका हित चाहे ऐसी विशुद्धि लानेका उपाय क्या है? ऐसी विशुद्धिका उपाय सद्विचार एवं सद्भावना है। ऐसे विचार निम्नांकित हो सकते हैं :—

(१) मेरे बिगाड़के लिये कोई भी कुछ प्रतिकूल बात नहीं करता किन्तु विरोधभाव, ईर्ष्या, अज्ञान, कषायकी वेदनासे स्वयं दुखी होकर वह विरोधी (वस्तुतः खुदका विरोधी) उस वेदनाको न सह सकनेके कारण जैसा समझमें आता वैसा यत्न करता है, वह तो दयापात्र है क्योंकि वह दुखी होकर खुदके दुःखनिवारणका यत्न कर रहा है, वह मेरा विरोधी नहीं, बिगाड़ करने वाला नहीं।

(२) विरोध विभावका आदर करनेवाला यह प्राणी खुदका ही परिणमन कर रहा है जिसका कि फल भी यह खुद उसी काल पा रहा है, इसका सारा काम इसीमें समाप्त हो जाता है, इससे बाहर न इसका असर है और न इसका कुछ काम है। मैं अपने प्रदेशास्तित्वके किलेमें पूर्णतया सुरक्षित हूं, सुख अथवा दुःख बाहरसे कुछ भी मुझमें आ सकता नहीं है, मैं ठीक हूं, सुरक्षित हूं, निरापद हूं। मेरा शरण मेरा ज्ञान है, मेरा दुश्मन मेरा अज्ञान है।

(३) मेरे होते या अनहोते दोषोंको बखानकर कोई मुझे सावधान करे और दोषोंसे बचावे ऐसे उपकारीका तो मुझे कृतज्ञ होना चाहिये।

(४) कोई मेरे पापकर्मोंकी निर्जराका कारण बनकर मुझे नर्कसे बचावे और खुद इस कषायभावके कारण नर्क जावे ऐसे अतुल उपकारीका तो मुझे आभार मानना चाहिये।

(५) संसारमें अनन्तों प्राणी दुःसह दुःखोंसे पीड़ित हैं। यदि मैं उपसर्ग कृत काल्पनिक साधारण क्लेशको उपयोगसे निकाल दूं तो इसमें कौनसी कठिनाई है।

(६) मैंने भेदविज्ञानकी महत्ताका दूसरोंको उपदेश किया व कभी कभी भेदविज्ञानकी भावना कर शुद्ध भावके उपयोगका अभ्यास भी किया; अब यह उसकी परिक्षाका अवसर है, वे प्रतिकूल प्रवृत्ति वाले (विरोधी) जन परिक्षक बनकर आये हैं सो अब परीक्षामें उत्तीर्ण ही होओ; ऐसे सर्व विविक्त चैतन्य स्वरूपकी उपासनामें लगो, बाहर कुछ भी न देखो, बाहर तेरा कुछ भी नहीं है।

(७) तपस्या करके जो कर्म खिपाये जाते वे कर्म अब मेरे बिना यत्न किये ही खिप रहे हैं यह तो विरोधी द्वारा बड़ा ही लाभ पहुँच रहा है। इसका तो उपकार ही मानना चाहिये व समताभाव करके इस उपकारको बना लेना चाहिये।

हित तो वीतराग विज्ञान है। कारण समयसार रूप वीतराग विज्ञान की दृष्टिके प्रसादसे जिनका इसी वीतराग विज्ञानका आलम्बन दृढ़ होता गया है और कारणपर्यायसमयसाररूप एकदेश वीतरागविज्ञान परिणामके साधनसे एकदेशकार्य समयसाररूप वीतराग विज्ञानके साध्य होते होते पूर्णकार्यसमयसाररूप वीतराग विज्ञान प्रकट हो गया है वे परमात्मा परमेश्वर इस वीतराग विज्ञानके कारण पूज्य हुए हैं, महान् हुए हैं। वीतराग विज्ञान ! जयवंत होहु।

पर पदार्थका उपयोग लेश भी तो न रहे ऐसे पर निरालम्ब उपयोगकी करामात सर्वोच्च है इस उपयोगमें महति शक्ति है जिसके परिणाम स्वरूप अनेकों कर्म झड़ जाते हैं, विशिष्ट पुण्य प्रगट होता है। हे आत्मन ! वर्तमान तुच्छ वैभवकी रुचि छोड़, मान बन, उदार बन, परम उपासक

वन। हे आत्मन् तू स्वयं ज्ञान आनन्दका पुञ्ज है। प्रत्येक स्थितिमें ज्ञान व आनन्द तेरा ही तेरेसे प्रगट होता है। तेरी दुनिया सारी तू है। लोकों की ओर दृष्टि न दे, जिसमें तेरा हित है उसको कर, किसी दिन यह जीवन दीपक बुझ जायेगा। क्या रहेगा तेरे साथ। तेरा ही परिणमन तेरे हाथ है या रहेगा। हे भगवत्सदृश गुण पुञ्ज! विषयविषकी वार्ता भी मत कर, तो सर्व विश्व तेरे ज्ञानका विषय हो जायगा।

दुखका कारण अन्तरंग परिग्रह है। वह बाह्य परिग्रहके त्याग बिना छूटता नहीं है इसलिये बाह्य परिग्रहके त्यागका आदेश है किन्तु वस्तुत:दुख का कारण अन्तरंग परिग्रह है अतः इसके त्याग बिना निराकुलता नहीं हो सकती। अन्तरंग परिग्रहका त्याग वस्तु स्वरूपके यथार्थ ज्ञान बिना नहीं हो सकता। अतः मुमुक्षुओंको चाहिये कि वे वस्तु स्वरूपके यथार्थ ज्ञान पानेका यत्न करें।

जब वस्तु-स्वरूप यथार्थ जाना कि समस्त वस्तु उस ही स्व स्वके तन्त्र हैं। किसी वस्तुका किसी अन्य वस्तुमें परिणमन होता ही नहीं याने कोई किसी अन्य वस्तुका परिणमन कर सकता ही नहीं, तो बतावो ऐसा ज्ञान हो जानेपर कौन यह विचार सकता है कि मैं अमुक पदार्थको यों परिणमा दूं। जब वह ज्ञानी पर पदार्थके परिणमनका भाव ही नहीं करता तो फिर उसे कृतकृत्य क्यों न कहा जाय अर्थात उसे कुछ काम करनेको रहा ही नहीं ऐसा क्यों न समझा जाय।

वस्तुतः कर्त्ता योग और उपयोगको कह सकते हैं उसमें मुख्यतया उपयोगको कह सकते हैं। जब ज्ञानीका उपयोग परमें कुछ कर देनेकी प्रतीति के साथ नहीं चलता तो उसे कर्त्ता कैसे कहा जावे। उपयोगसे कर्ता न होकर भी जब तक क्रोधादिभाव चलते हैं निमित्त नैमित्तिक भाव पूर्वक जैसे अचेतनोंमें अनेक परिणमन चलते हैं वैसे ही यहां भी अबुद्धिपूर्वक चलते हैं। इतने मात्रसे जैसे अचेतन अचेनोंमें प्रायः कर्तृत्व व्यवहार नहीं चलता इसीप्रकार यहां भी रागादिके कर्तृत्वका व्यवहार नहीं चलना चाहिये।

यह आत्मा अकर्त्ता इन इन दृष्टियोंसे देखा जाताहै:—

(१) और कुछ करनेका भाव हो व और कुछ करनेमें आजाय तो भावसे अकर्त्ता।

(२) सम्यक्त्वके कारण प्रतीतिसे अकर्त्ता।

(३) उपयोगमें परके करनेका विकल्प न होनेसे उपयोगसे अकर्त्ता।

(४) बुद्धिपूर्वक रागादि परिणमन मिट जानेसे अनुभवसे अकर्त्ता।

(५) समस्त रागादि परिणमन हट जानेसे परिणमनसे अकर्त्ता।

(६) पूर्ण शुद्ध परिणमन हो जाने पर सर्वथा अकर्त्ता।

(७) शुद्ध स्वरूपमें कर्त्ता कर्मका भेद नहीं सो द्रव्यदृष्टिसे अकर्त्ता।

सब जीवोंका प्रयोजन एक ही है दुःखसे छुटकारा पाना। दुःख मात्र कषाय ही है। क्रोध करता हुआ प्राणी व्यर्थही अपने आपमें क्रोध करता क्योंकि उसके क्रोधसे दूसरेका तो कुछ होता नहीं जैसा कि वह चाहकर क्रोध कर रहा है, तो फिर क्रोधसे केवल अपनेको ही बरबाद करनेका यत्न कर रहा है। इस क्रोधके दुःखसे छुटकारा पानेका उपाय मात्र सम्यक अव बोध है। जब ही यह बोध हुआ कि प्रत्येक द्रव्य मात्र अपना परिणमन करते जाते हैं अपनी अपनी योग्यताके अनुकूल, मेरे लिये किसने क्या कुछ नहीं किया और न कुछ कर सकते हैं, यहां तक कि मुझे तो कोई अन्य समझ भी नहीं सकता है जब ही यह बोध हुआ कि क्रोध शांत हो गया

मान करता हुआ प्राणी व्यर्थ ही अपने आपमें संक्लिष्ट होता रहता है, क्योंकि वह अपने स्वरूपको भूलकर देहादि बाह्य अर्थमें, पर्यायमें आत्मबुद्धि करनेसे अन्यको नीचा समझकर कल्पित निजकी बड़ाई करानेकी कुबुद्धि कर रहा है। इस मानके दुःखसे छुटकारा पानेका उपाय मात्र सम्यक् अवबोध है। जब ही यह बोध हुआ कि मैं आत्मा तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूं, ये शरीरादिक बाह्य पदार्थ हैं, अध्रुव पर्याय हैं इनका मुझमें अत्यन्ताभाव है, ये सब जीव भी वस्तुतः शुद्ध चैतन्यस्वरूप हैं, ये शरीरादिक उनसे भी भिन्न हैं, सब द्रव्य अपना अपना ही कार्य करते

हैं, कोई किसीका कुछ नहीं करता, यहां तक कि न मैं किसीको कुछ समझा सकता हूं और न कोई मुझे समझा सकते हैं जब ही यह बोध हुआ कि मान शान्त हो गया।

माया करता हुआ प्राणी व्यर्थ ही अपने आपको दुःखी करता है, क्योंकि कोई भी परवस्तु क्षण भरको भी तो अपनी होती नहीं और यह मायावी मान रहा है अन्यसे अपना हित, इसके अतिरिक्त मायाचार करके अनेकों शल्यें और बना रहा है। इस मायाके दुःखसे छुकारा पानेका उपायमात्र सम्यक् अवबोध है। जब ही यह बोध हुआ कि समस्त पर पदार्थ व इज्जत आदि मुझसे भिन्न हैं एवं अहित हैं, तब ही माया शान्त हो गयी।

लोभ करता हुआ प्राणी व्यर्थ ही अपनेको झंझटमें डालता है क्योंकि वह अपने शुद्धस्वरूपको भूलकर ही परके संग्रहमें हितका भ्रम करके नाना विकल्पोंकी झंझट बढ़ा रहा है। इस लोभके दुःखसे छुटकारा पानेका उपाय मात्र सम्यक् अवबोध है। जब ही यह बोध हुआ कि मेरा तो मात्र मैं ही हूं बाह्य अर्थोंसे मेरा रंच भी सम्बन्ध नहीं। तब ही लोभ शान्त हो गया।

जीवको झंझटे दो लगी हैं— (१) रागकरना, (२) द्वेष करना। इन दोकी जड़ है मोह। राग तब होता है जब कोई अपनी इच्छाके अनुकूल परिणमे। द्वेष होता है तब जब कोई अपनी इच्छाके प्रतिकूल परिणमता है। जब कोई अनुकूल परिणमता है तब वहां यह न मानो कि मेरी इच्छा के कारण यह ऐसा करता है, वस्तुस्वरूपका कोई उलङ्घन नहीं कर सकता जैसा वस्तुस्वरूप है तैसा ही वर्णन जैन सिद्धान्तमें है, जैन सिद्धान्तका कोई उल्लंघन नहीं करसकता। जब कोई प्रतिकूल परिणमता है तब बुरा माननेकी बात क्या है वह प्रतिकूल परिणमने वाला तो आपको सत्य ज्ञान उत्पन्न करानेके लिये आदर्श बन रहा है कि देखो हम धर्मका उलङ्घन नहीं करते, धर्मस्वरूपमें यह बताया है कि कोई भी पदार्थ किसी दूसरे पदार्थके परिणमनको नहीं कर सकता; हम तुम्हारे परिणमनके कारण, इच्छाके

कारण नहीं परिणमते। जगतमें एक पदार्थका दूसरा पदार्थ कुछ नहीं लगता इसकी पहिचान क्या है? यही तो है कि एकके परिणमनसे दूसरा नहीं परिणमता है यही तो हम (कल्पनासे प्रतिकूल परिणमने वाले) दिखा रहे हैं, अपने स्वभावमें स्थिर होओ, परकी दृष्टि कर दुःखी मत होओ।

राग द्वेष अध्यवसानरूप वृक्षकी शाखायें हैं। जैसे जड़के कटने पर शाखा कब तक हरी रह सकती है, प्रति क्षण सूखनेकी ओर ही है वैसे ही मोहके दूर होनेपर राग द्वेष कब तक विराज सकते हैं प्रतिक्षण नाश की ओर ही जाते हैं। जिस मोहके होनेपर सारी विडम्बनायें हैं वह मोह है क्या! यह ही तो है कि दो वस्तुओंका परस्पर सम्बन्ध मानना। निमित्त नैमित्तिक भाव होनेसे कहीं दो वस्तुओंका परस्पर सम्बन्ध नहीं हो जाता, वस्तुऐं तो प्रत्येक अपने ही अपने स्वरूपमें हैं अतः वस्तुओंका परस्पर तीन काल भी सम्बन्ध नहीं याने किसीका अन्य कोई नहीं बन जाता और न किसीकी परिणतिसे अन्य कोई परिणम जाता।

कल्पनाओंसे सिद्धि नहीं, सिद्धि तो साक्षात स्वभावदृष्टिसे है जब तक स्वभावकी परख नहीं है तब तक स्वभावकी परखका मार्ग बने इसके अनुकूल कल्पनाओंका होना लाभकारी है।

वस्तुस्वरूपका यथार्थ भान होनेपर लोभ नहीं रह सकता। परकी ओरका आकर्षण तभी तक रह सकता है जबतक कि ज्ञानानन्दमय निज पारमैश्वर्यका अनुभव नहीं हुआ। यद्यपि प्रत्येक जीवको जो भी ज्ञान व आनन्द होता है वह उसके ही स्वभावसे उठकर होता है परन्तु मोही जीव अर्थात् जिसे परसे ही हित व रक्षण दीखता ऐसा जीव "अपनेसे ही ज्ञान व आनन्द उठा" यह माननेको तैयार नहीं होता, क्योंकि उसने तो मिथ्यात्यमें अपना रंग जमाया है।

मिथ्यात्व झूंटेपनको नहीं कहते किन्तु अनेक पदार्थोंमें परस्पर सम्बन्ध माननेकी बुद्धिको कहते हैं। परस्पर सम्बन्ध तो रंच भी नहीं है और सम्बन्ध माना जावे तो वह झूंठ बात ही तो हुई, इसकारण मिथ्या

का अर्थ झूंट प्रचलित हो गया। वस्तुतः जो जो जीव परका निजसे व अन्य परसे सम्बन्ध मानते हैं वे वे सब झूंठे ही हैं। झूंठा मत बनो प्रत्येक पदार्थको स्वतन्त्र स्वतन्त्र देखो।

जो विषयोंका लालसी होगा वहि आत्मकल्याणमें आलसी होगा व वही परके आधीन बनता फिरेगा। संयमकी साधना करना है इस जीवन में सो जीवन जहां तक रहे वहांतक संयम साधनाका यह लगातार अवसर रहे अत एव जीवनके लिये आहार बिहार आवश्यक है, सो उचित पद्धतिसे आहार बिहार कर ले। अब और और विडम्बनाओंसे क्या मतलब है।

पराधीनता कम करनी हो या मिटानी हो तो पहली बात यह है कि इन्द्रियका विजय करो। वस्तुतः इन्द्रियका विजय सम्यक्त्वके होनेपर ही होता है सम्यक्त्व है या नहीं इस झगड़ेको न करके सीधी यह बात मान लो इन्द्रियविजय तो लाभ ही करता है। जो जिस पदमें है वह उसके लायक लाभ ले यह अन्य बात है किन्तु इन्द्रिय विजयसे हानि किसीको नहीं हो सकती।

कोई इन्द्रिय लोलुपी यदि बड़े आडम्बरसे रहे या बड़े ही सरस भोज न करे या अन्य बड़े ही विषय-साधन बनाये तो वह ईर्ष्याका पात्र नहीं किन्तु दयाका पात्र है। उसे दीन समझकर न तो उसका अनुकरण करो और न ईर्ष्या करो।

पर पदार्थ पर ही है उसकी कुछ भी आशा करना शल्य है। जो इस शल्यसे रहित हैं वे कृतार्थ हैं। मुमुक्षु जन उनके चरणोंमें शिर झुकाते हैं किन्तु उन निःशल्य अन्तरात्मावोंका इस ओर भी रंच आकर्षण नहीं, अन्यथा वे निःशल्य ही नहीं। समय बीतता जाता है, बात भी बीतती जाती है, अन्तरमें अन्तर नहीं आता। हे आत्मन्! जैनधर्मका मर्म तो स्वरूपाचरणमें है। आत्महित स्वरूपाचरणमें है। परमें तेरा अत्यन्ताभाव है। जड़से शिर मारकर तू क्या पाना चाहता है और तुझसे सदा ही जुदा परिणमन करते रहने वाले खुदगर्ज अन्य जीवोंसे सिर मार कर तू

क्या पाना चाहता है। तेरेसे बाहर तेरा कुछ नहीं है। तेरा शरण तू है किन्तु जिस प्रकारमें तू शरण बन सकता है उस प्रकारमें तू अपनेको देख लौकिक इज्जतमें होली लगा दे, अलौकिक इज्जतके साथ फाग खेल ले। चैतन्य महागुरुको उपासनाकी माला पहिना दे, निज स्वभावके निश्चय-निश्चित वरद्हस्तमें दृष्टिरूपी राखीका बन्धन बांध दे और निज गुण दीपावलिके प्रकाशमें तू ऐसा प्रकाशित होकर मिलजा कि तेरा अलगसे कोई पता न रहे।

लौकिक कलावोंसे कोई सिद्धि नहीं, वाक्यचातुर्यसे कोई सिद्धि नहीं, वैभवसंचय से कोई सिद्धि नहीं, आपकी सिद्धि तो आपके यथार्थ भावमें है। लोक क्या कहेंगे यह शल्य जिनको है वे धर्ममार्गमें क्या चलेंगे लोक मुझे अच्छा जाने यह शल्य जिनको है वे धर्ममार्गमें क्या चलेंगे। लौकिक इज्जतके मुंहमें धूल झोंक दो, वह मिथ्या भाषण करती है, कराती है। अपनी दृष्टिमें तू इज्जतवाला बन, क्यों कि तेरा रक्षक तू ही है। जो तेरा कुछ नही कर सकते उनके लिये तू व्यर्थ मरता है। जिसके प्रसादसे ही सर्व सिद्धि होगी ऐसे निज चैतन्य महा प्रभुका रंच भी विनय नहीं करना चाहता है। यह सब मोह महामद्के तीव्र नशेका ही खेल है।

मार्ग तो पूरा साफ है। दुखका मार्ग तो स्नेह है, आशा है। आनन्द का मार्ग परकी उपेक्षा है, स्वभावकी उपासना है। इक दम चलते क्यों नहीं बनता आनन्दके मार्गपर। जीवनमें अनेक घटनायें ऐसी हुईं कि जो समझमें आया उसीका आग्रह करके वेगपूर्वक चला। अब सम्यग्ज्ञान की समझ हुई तो उस मार्गका आग्रह करके वेगपूर्वक क्यों नहीं चलता। रोकने वाला तो कोई और है नहीं। हे मुमुक्षु! बार बार भावना कर निज असंग अखंड अबंध चैतन्य स्वभावकी विजयका यही सरल उपाय है।

किसी न किसी इच्छाके होनेपर ही परकी परिणतिमें प्रतिकूलताका भान होता है। यही आवाज (शोर गुल) जो कि रास्तोंपर है, ज्ञेय ही रहती है जब कि कोई इच्छा न रहे। आत्मामें लीन होनेकी भी इच्छा अन्यमें प्रतिकूलताका भान करानेवाली बन जाती। आत्मामें भी लीन

होनेकी भी इच्छा क्यों हो, जो पदार्थ जैसा है वैसा ही जानते रहनेमें सिद्धि है। जो बात पदार्थमें नहीं उसकी कल्पना मत करो तो विजय स्वयं ही है। भगवान तो जानते ही मात्र है इसी तत्त्व को आत्मामें लीन है ऐसा कहते हैं। आत्मामें लीन होना तो सबसे उत्तम यही है कि ज्ञाता द्रष्टा रहना। इच्छा तो सभी किसी न किसी प्रकारकी बाधा पहुँचाती रहती है।

इच्छाका अभाव वस्तुस्वरूपके परिज्ञानसे हो सकता। किसीका कोई नहीं है क्योंकि सर्व अपने अपनेमें ही परिसमाप्त हैं। किसीका कुछ किसी अन्यमें होता तो विश्व ही सारा गड़बड़ होजाता। विश्व अबतक सुरक्षित है और भविष्यमें सदैव सुरक्षित रहेगा यह वस्तुसीमाका उल्लङ्घन न होनेका ही प्रसाद है। देखो ! कोई भी पदार्थ अपनी सीमाका उल्लङ्घन नहीं कर रहा है क्या तुम विकल्पों द्वारा अपनी सीमाका उलङ्घन करना चाहते हो। सीमा तो न लांघी जा सकेगी तुम ही अटपट रहकर दुःखी होते रहोगे। सर्व इच्छा छोड़ो, अपनी सीमामें ही सर्व प्रकार रहो, फिर शान्ति ही शान्ति है।

आत्मा तो एक ऐसा चेतन द्रव्य है जैसे कि अनन्तानन्त आत्मा चेतन द्रव्य है ! किसी आत्मामें किसी अन्यसे कोई विशेषता नहीं, अतः नाम धरके भी जुदापन कैसे किया जा सकता है कि इस नाम वाला तो यह आत्मा है और नहीं, इसी कारण आत्माका नाम भी नहीं रक्खा जा सकता। नाम तो किसी द्रव्यमें नहीं है, आत्मामें ही नाम कैसे हो जावे। आत्मा निर्नाम है। जो कोई समझता कि मेरा यह नाम है वह बहिर्दृष्टि है। असमानजातीय पर्यायें विषम हैं, अनेक प्रकारकी हैं उनका नाम रखा जा सकता है, किन्तु उनके नामको ही अपना नाम समझ लिया जावे तो बहुत ही बड़ा अपराध है जिसकी सजा दुर्गति की प्राप्ति है, संसारका परिभ्रमण है, आकुलताओंका करते रहना है। पर्यायके नामको अपना नाम समझनेका महान अपराध मत करो। ॐ निर्नाम शुद्ध चिद्रश्मि।

धनकी अपेक्षाका भाव महती मूर्खताका परिणाम है। इससे विकट अन्धकार विकट विडम्बना और क्या कही जा सकती है कि जड़ और प्रगट भिन्न पुद्गल स्कन्धके प्रति ज्ञानानन्दमय परमेश्वर सदामुक्त चैतन्य महा प्रभुके विकारविकासका आकर्षण रहे। हे विवेकी हंस ! हे पुरुषार्थी सिंह ! हे गम्भीर वृषभ ! अपने धर्मको संभाल। दुनियां मायाजाल है। किसी अन्यकी वृत्तिसे किसी अन्यका बिगाड़ सुधार नहीं है। तेरे ही परिणमनसे तेरा बिगाड़ सुधार है। अपने परिणामको मोक्ष मार्गके योग्य बनानेमें लगाओ। ऐसे मोक्षमार्ग रहते हुए भी यदि असहिष्णु अन्य लोग उपसर्ग करें, गाली दें, निन्दा करें तो भी अयशःकीतिका उदय वस्तुतः नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह मोक्षमार्गी तो लोकोंका उस अटपटी प्रवृत्तिके कारण रंच भी क्षुब्ध नहीं हो रहा है, रंच भी ग्लान नहीं हो रहा है, रंच भी उन्हें स्वीकार नहीं कर रहा है। प्रत्युत सहज स्वरूपके अनुभवके बलसे अपनेको शुद्ध आनन्द मग्न पाता है।

बाह्य पदार्थके संयोगके कारण अपनेको बड़ा समझना पागलपन है। जैसे कहीं बैठा हुआ पागल आते जाते ठहरते हुए मनुष्योंको, जानवरोंको मोटर आदि सवारियोंको अपना माने और उस मान्यतासे अपनेको बड़ा समझे, खुशी माने तो लोक उसे विवेकी कहेंगे कि पागल ! पागल, क्यों कि वे आते जाते कुछ देरको ठहरे हुए ठाठ हैं, अपने अपने समयपर चल देने वाले हैं। जब चल देते तब पागल रोता है। इसी प्रकार कहीं जन्मा हुआ इन्सानके रूपमें आया हुआ यह मतवाला आतेजाते ठहरते हुए मनुष्योंको, जानबरोंको, आडम्बरोंकी अपना माने और उस मान्यतासे अपनेको बड़ा समझे, खुशी माने तो ज्ञानीजन उसे विवेकी कहेंगे कि पागल ? पागल, क्योंकि वे सब ठाट बाट आते जाते परिणमते बनते बिगड़ते कुछ देरको ठहरे हुए हैं, अपने अपने समयपर कहींके कहीं चलदेने वाले हैं, जब चल देते तो यह मतवाला रोता है। अरे भाई जब परका संयोग है तब भी ये तेरे नहीं हैं, जब बिछुड़ते हैं तब भी तेरे नहीं हैं। अपने सहज स्वरूपको देखकर प्रसन्न होओ और खोटी टेव छोड़ दो।

सत्य व्यवसाय तो यह है जितना कि त्रैकालिक चैतन्यस्वभावका उपयोग रहे। जो ध्रुव है सो मैं हूं और जो अध्रुव है वह मैं नहीं हूं साथ ही जो मेरे स्वरूपसे बाहर है वह मैं नहीं हूं। इस दृष्टिसे मेरे त्रैकालिक चैतन्यस्वरूपके अतिरिक्त सब पर है अतः मेरी अपेक्षासे अचेतन है। अचेतनके उपयोगसे होनेवाले ज्ञानको विषयीमें विषयका उपचार करके अज्ञान कहाजाता है। आज्ञानसे सिद्धि नहीं है। त्रैकालिक ध्रुव चैतन्यस्वभावके उपयोगसे होनेवाला ज्ञान ज्ञान तो है ही चैतन्यमात्र व ज्ञानमात्रका विषय करनेसे विषयीमें विषयको देखनेपर भी ज्ञान है। ज्ञानसे ही आत्मसिद्धि है

जितना क्षण चैतन्यस्वभावके उपयोगमें बीते वह धन्य है व सफल है। मनुष्यभवकी सफलता त्रैकालिक चैतन्य स्वभावमय आत्माके परिचयमें है। निश्चयतः दृश्यमान सब अस्थिर है। वर्तमान शरीर भी असमान जातीय द्रव्य पर्याय है। उपयोग किस जगह देना योग्य एवं हितकर है इसका निर्णय करके वहीं उपयोग स्थिर करना सो वास्तविक धर्मपालन है। निज ध्रुव चैतन्यस्वभावका अवलोकन एवं उपयोग हितकर है। जीवको शान्ति देने वाला भेदविज्ञान ही है। वस्तुतः किसीको कोई क्लेश नहीं है। स्वभावदृष्टिसे च्युत हुए तो सर्वत्र क्लेश ही क्लेश है। आत्मा स्वयं ज्ञान व आनन्दका पुञ्ज है। बाह्य पदार्थसे ज्ञान आवेगा या बाह्यपदार्थसे आनन्द आवेगा ऐसी दृष्टि होना ही तो मिथ्यात्व है। आत्मा जब अपने स्वभावका निर्णय करके स्वभावका ही आश्रय करता है तब ज्ञान व आनन्द उत्तरोत्तर वेगपूर्वक विकसित होते चले जाते हैं। बाह्य पदार्थके संयोगसे हित व बड़प्पन माननेका परिणाम दुःखका हेतु है। आत्माका हित आत्मामें है, आत्माका महत्त्व आत्मामें है। जो कुछ भी परिणमन होता है वह आत्माका परिणमन है, बाह्यको निमित्त पाकर होने वाला परिणमन दुःखका कारण है और बाह्य उपाधिके आश्रय बिना होनेवाला परिणमन आनन्दरूप है।

हम परिणमते तो हैं किन्तु विवेक करके ठीक ठीक ज्ञान करते रहनेपर तुल जांय तो हमारा परिणमन आनन्द का आधार ही होगा। हम अपने

परिणमनके सिवाय अन्य कुछ तो कर सकते हैं ही नहीं तब परकी आशा करना परका संस्कार रखना निरर्थक किया जाता है। ऐसी कुटेवसे छूट कर विश्राम पाना ही सत्य पुरुषार्थ है।

एक भी अणुको अपना मत मानो, हित मत मानो। यह समझ ही सर्वोपरि समझ है। इसी समझके आधार पर कल्याणका मुकाम टिका हुआ है। मनुष्यभव पाकर भी यदि यह परवशता अनुभूत की कि क्या करें ज्ञान होकर भी ज्ञानभावनाके मार्गपर चला नहीं जाता तो बताओ अन्य और किस स्थितिमें करोगे। कुछ करना भी तो नहीं, क्योंकि अन्य पदार्थकी चाहे वह शरीर हो या धन वैभव- कर भी तो कुछ सकते नहीं केवल ज्ञानभावना करना है।

प्रिय आत्मन्! खूब विचारो जो जोर देकर कर सकते हो उसीके ना तुम कर्ता हो। अब सोचलो तुम क्या कर सकते हो! कंपनके तुम कर्ता नहीं, प्रदेशसंकोच विस्तारके तुम कर्ता नहीं, वाणीके तुम कर्ता नहीं, शरीर चेष्टाके तुम कर्ता नहीं, एक उपयोगके ही तुम कर्ता हो। यद्यपि तुममें अनेकों परिणमन होते किन्तु उपयोग सिवाय बाकी परिणमन तो इस भांति होते हैं जैसे कि स्कन्धोंमें निमित्तिनैमित्तिक विधिसे जो होना होता है होता है और इसी कारण योग आदि पर तुम्हारा वश भी नहीं चलता और चलता है तो वह भी उपयोगकी विशुद्धिके बलसे। अतः एक उपयोगकी सम्हाल करो इससे अधिक कुछ करनेको नहीं है और जो कुछ अधिक होना आत्मामें आवश्यक है वह सब स्वयं सहज उपयोग विशुद्धि के बलसे आ ही जावेगा।

शुद्ध हूं, बुद्ध हूं, नित्य हूं, निरञ्जन हूं, ज्ञाता हूं, द्रष्टा हूं, परमात्मा हूं, परमेश्वर हूं, ज्ञायक स्वभावी हूं, निःशल्य हूं, निरूप द्रव हूं, गुप्त हूं, सुरक्षित हूं, निश्चल हूं, निष्काम हूं, उपयोगमात्र हूं आनन्दमय हूं, ज्ञानगम्य हूं, शाश्वत प्रकाशमान हूं, एक स्वरूप हूं, अन्य सबसे विविक्त हूं, अविकार हूं, चैतन्यमात्र हूं, सच्चिदानन्द हूं। ॐ शुद्धं चिदस्मि। शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम्। ॐ तत्सत्।

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

प्रिय आत्मन् ! और कुछ न ध्यान बने तो इतना तो देखते जावो "मैं चैतन्यज्योतिमय हूं, ज्ञान व आनन्द इसी स्रोतसे प्रकट हो रहा है कैसा भी ज्ञान व कैसा भी आनन्द गुणका परिणमन हो, होता यहींसे, बाहरसे कुछ भी आत्मामें आता नहीं है" "देखो यह हुआ, यहींसे हुआ"।

हे आत्मन् ! संसारमें किसीका भी अन्य कोई शरण नहीं है। पापभाव करोगे तो यहांके परिचितोंमेंसे कोई भी बचाने वाला न होगा। अन्यत्र की तो बात क्या उन परिचित दूसरोंके लिये तुम व्यर्थ होजावोगे तब इसी जीवनमें तेरे प्रतिकूल होकर तेरे क्लेशमें निमित्त हो जावेंगे। सदैव उपयोग की सम्हालका यान कर। कितनी भी सिद्धता हो जाय झट सम्हलनेका यत्न कर। तेरा तेरे सिवाय कोई नहीं है। क्यों हो, सभी तो अपने अपने अस्तित्वकरि तो सत् हैं। इसमें बुराईकी बात नहीं, सचाईकी बात है।

अहो देखो, वस्तुस्वरूप घोषणा करके मानो कह रहा है कि हे चेतन पदार्थों : चाहे तुम अपना धर्म छोड़ दो, चाहे तुम विपरीत धारणा करके कलङ्कका भार ढोते रहो, हम तो अपने आपकी बान नहीं छोड़ेंगे, हम तो अपने परिणमनसे आये अपने परिणमनसे जायेंगे, हम अपनी योग्यता से अपना परिणमन करेंगे। हे आत्मन् ! सीखना हो तो तुम्हारे लिये तो जड़ पदार्थ भी शिक्षक हो सकता है न सीखना हो, कुटेवमें ही रहकर मरना हो तो तेरे लिये ज्ञानी भी गुरु कुछ नहीं है।

प्रियतम आत्मन् ! तुझे शान्तिकी परवाह नहीं है क्या ? है तो शान्तिकी राह पर चल। जिस मायाजालसे ठगकर अनादिसे संसारपरिभ्रमण करते आये हो वही मायाजाल रचे तो इसका फैसला क्या है सो स्पष्ट ही है, अनुभूत ही है। दुनियामें कुछ हो तुम अपने स्वभावप्रतीतिसे मत चिगो। दुनियांकी दृष्टिमें भले जचनेसे सिद्धि नहीं, परके लक्ष्यसे रागानुकूल कल्पना करके सुखाभासकी लब्धिसे सिद्धि नहीं। चाहिये तो यह कि क्षण भरको परोपयोग न रहे, किन्तु, नहीं हो सकता है ऐसा तो जो जाननेमें आवे उसके ज्ञाता द्रष्टा रहे आवो।

निर्णय कर, निर्णय कर, निश्चयपूर्वक समझ, जो भी तुझे अन्य पदार्थोंमें अधिक रुचता है वह तेरे क्लेशका उतना ही विशेष निमित्त है व होगा। अन्य अन्तरात्मावों व परमात्मतत्त्वकी रुचि तो वीतरागताकी रुचिके कारण होती है अतः वे क्लेशके निमित्त तो नहीं होंगे बल्कि सुधारके निमित्त होंगे तो भी वर्तमानमें तो तेरे शुद्धोपयोग अर्थात् स्वभावोपयोगको रोके हुए है यह परलक्ष्यका भाव। प्रतीति सत्य कर। सम्यक्त्वसे ही तेरी विजय है।

इस जगतमें तेरा क्या है ? किसके लिये निरन्तर आत्मघात करते हो अनन्तकाल तो बीता विविध सुख दुखोंमें, सार क्या है किसी भी परके उपयोगमें, क्यों विवश हो रहा है किसी जड़ संयोगमें। हे आत्मन् ! अनादिसे ही तो संसारमें भटकते चले आये हो। जड़से शिर मार कर अपना क्या लाभ पा लोगे ? जिन्हें तू खुश करना चाहता है, जिनका तू भला करना चाहता है उनका बिचार उनके आत्मा में ही है, वे स्वतन्त्र हैं तुम्हें अच्छा समझही लें यह कैसे हो सकता है। अथवा हो भी जावे तो उनके विचारसे, परिणमनसे तुम्हें क्या मिल जावेगा।

हे प्रभो ! हे आत्मन् ! अपनी प्रभुताका उपयोग छोड़कर परकी इच्छारूप भीख मांगना यह तो बड़ा भारी उपसर्ग है। इस उपसर्गको ज्ञानबलसे दूर करो। एक दम सर्व इच्छायें टार कर असंग, अखण्ड, ज्ञानानन्दनिर्भर निज तत्त्वका उपयोग करो। तुमने बड़ी हैरानी ठाड़े बैठे मोल ली है। इस हैरानीको तो तुम क्षणमात्रमें ही दूर कर सकते हो। तुम चैतन्यमात्र हो, पर उपाधिकी विडम्बना तुझमें झलकती है तुम उसके कर्ता नहीं हो। हां उसको जानकर विकल्प करते हो तो तुम विकल्पके कर्ता हो रहे हो वस्तुतः तुम विकल्पके भी कर्ता नहीं हो, क्योंकि वह विकल्प भी उपाधिकृत विडम्बना है। क्या कहा जाय, बड़ी अनहोनी हो जाती है तो उसपर कुछ कहे भी नहीं बनता, न कहे भी नहीं बनता। यह सब अज्ञानकी लीला है। ज्ञानमें तो कोई विडम्बना ही नहीं है।

ज्ञान ही धैर्य है व ज्ञानका दृढ़ उपयोग रहना ही तप, व्रत, चारित्र

है। ज्ञानसे ही शान्ति है, ज्ञानसे ही मोक्ष है। ज्ञान बिना सर्वत्र असंतोष है। जगतमें अनेक आत्मायें हैं स्वयंकी आत्मासे अन्य आत्मामें समान एकसमान पृथक हैं। ऐसा नहीं है कि कोई अन्य आत्मा तो ज्यादह पृथक् हो और कोई अन्य आत्मा कम पृथक हो, चाहे कोई खास मित्र हो तो भी उस आत्माका अस्तित्व उतनाही पृथक है जितना कि अन्य आत्माओंका। इसी कारण एकके विचारके कारण अन्य उस रूप नहीं परिणाम जाता है। वस्तुकी ऐसी स्वतन्त्रता देखने पर हैरानी नहीं होती। व्यवहार तो व्यवहारकी जगह होता ही है किन्तु सम्यग्ज्ञान होने पर सम्यग्ज्ञानके कारण अशान्ति नहीं होती। सम्यग्ज्ञानका विनय इसीमें है कि हम अधिकाधिक ज्ञानाभ्यास व ज्ञानभावनामें रहें।

दुःख कहीं भी नहीं है और मोही दुःखका पहाड़ बनाये हुए है। दुःख का स्थान आत्मा नहीं है, दुःखका उदय बाहरसे नहीं है, दुःख कल्पना से उद्भूत है। किसी भी समय सर्वविविक्त परिपूर्ण चैतन्य स्वरूपकी ओर दृष्टि कर तो सारा दुःखोंका भी पहाड़ कुछ भी नहीं रहता है।

हे चेतन देव! तुझे कब सुध आवेगी। सुधका अवसर तो यह नरभव है, यहीं नहीं चेत रहे हो तो फिर कहां चेतोगे। देख सर्व पर्याय मायामय हैं, अस्थिर हैं तेरा उनसे कोई सम्बन्ध नहीं। तेरा तो नाम भी नहीं। जैसे सब चेतन द्रव्य हैं वैसा ही तू चेतन द्रव्य है। जितने शक्तिमय सब हैं। उतनी शक्तिमय तू है। जितने गुण सबमें हैं उतने ही गुण तुझमें हैं। सब अमूर्त हैं तू भी अमूर्त है। नाम कहांसे रखा जावे कोई विशेषता नजर आवे सबसे जुदा करने, समझने लायक तो नाम रखा जासकता है। सो तो कोई ऐसी विशेषता नजर आती नहीं फिर नाम कैसे कहावे। बिना नामका तो तू है फिर किसकी इज्जतके लिये मरा जाता। लोकमें इज्जत भी रह गई तो क्या कोई लोग तेरा कुछ परिणमन कर देंगे सब माया है, विवाद है।

घर छोड़ा, कुटुम्ब छोड़ा और सही रूपमें छोड़ा। तुझे उनकी कोई याद भी नहीं आती, कभी कोई राग भी उत्पन्न नहीं होता, किन्तु अब

वर्तमान जीवनमें संस्थाका राग है संस्थाकी धुन है तो इसे क्या कुछ भला कहा जा सकता है चिन्ताके मारे तो मरे जाते हो , व्रत क्या रहा , तप क्या रहा । समाज ही ऊपरसे तपस्वि व्रती मानती है किन्तु तुम्हें भी अन्त रङ्गसे वर्तमान प्रणालीमें सन्तोष है जरा सही उत्तर तो लो । हे भगवन् मेरे भूलमें क्या भूल है कि सभी काम उल्टे ही उल्टे होते जा रहे हैं । मैं अपने स्वरूप मात्र हूं जो करता हुँ सो अपनेको , अपनेमें , अपने द्वारा व अपने लिये करता हूं , मानता हूं मैं परको अपने विषयमें अच्छा समझने वाला बनाता हूं , बस यहि भूल क्लेश की जड़ है । इस भूलका भी मूल यह है कि मैं अपने विचार विकल्प रूप पर्यायोंको अपनेसे भिन्न नहीं समझ पा रहा हूं , नहीं मान पा रहा हूं और उन्हीं विकल्प परिणामोंको आत्मा मानता हूं , अपना सर्वस्व मानता हूं । हे नाथ ! मुझपर बड़ा संकट है । काहेका ? अज्ञान का । बाह्य वस्तु का संयोग वियोग संकट नहीं है । मात्र अज्ञान ही महासंकट है ।

मैं ज्ञान आनन्दका पुञ्ज अमूर्त चेतन द्रव्य हूं । मेरा कोई नाम नहीं है । मेरा ज्ञान व आनन्द मेरेसे ही प्रगट होता है । पर पदार्थ कोई भी मेरे ज्ञानको या आनन्दको कर नहीं सकता । जगतका कितना भी वैभव समीप हो तो उससे किञ्चित भी लाभ नहीं है । किसी परसे ज्ञान व आनन्द मानने का संकट ही विशाल संकट है । शास्त्रसे , देवसे, गुरुसे ज्ञान या आनन्द नहीं होता मेरा । विषय साधनोंसे सुख नहीं होता मेरा और बड़े बड़े उपसर्गोंसे दुःख नहीं होता मेरा । मेरे ही परिणमनसे ज्ञान आनन्द, सुःख या दुःख है । परकी ओरका आकर्षण ही मेरेपर विशाल संकट है । हे भगवन् वह सब संकट मिटो , जैसी मुद्रा तुम्हारी है आनन्द तो इसी मुद्रामें है , जैसा तुमने किया यही शान्तिका मार्ग है । आपकी प्रतिमा ही मुझे मात्र उपदेश ही करती है । मैं देख रहा हूं कि जैसे इन्हें संसार के किसी भी पदार्थसे वास्ता नहीं है तो ये कितने प्रसन्न हैं , कितने निर्मल हैं ; कितने आनन्द विभोर हैं । यदि मार्ग मुक्तिका है ।

हे प्रभो ! शरणमें लो , अब मुझमें किसी भी पर पदार्थकी आशाका

भाव न जगे कोई भी पर पदार्थ चिन्तनामें न आवे। ॐ णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। अहो यह असंगव्यवहार, अहो यह स्वरूप ध्यान ही मंगल है, लोकोत्तम है व शरणभूत है। हे अकेले राम! सब कुछ अकेलेमें ही है फिर द्वैतपर दृष्टि देकर मूर्ख मत बन। हे सदाशिव राम! तू सदासे अपने ही स्वरूपमें वर्तता आया है, बाह्य विषयक कल्पना की तो वहां भी कल्पनारूपसे अपनेमें ही तो वर्ता। प्रिय! और अधिक कुछ नहीं बन सकता तो इस अपराधको तू अपने आपमें ही सब कुछ हो रहा इसतरहका यथार्थ ज्ञान तो कर ऐसा क्या विकट उदय है या विकट आपदा है जो अपने आपकी बात भी अपने आपमें नहीं समझ पाते। ॐ सत्यं शिवं सुन्दरम्।

लोकमें धर्म ही एक सार है, सर्व आनन्द धर्मके ही प्रतापसे होते हैं। धर्मका पालन भी अति सरल है। मैं आत्मा अपने ही प्रदेश प्रमाण हूं और मेरा सारा परिणमन इस निज आत्मप्रदेशोंमें ही होता है; मैं भी मात्र अपना ही परिणमन कर पाता हूं, मैं ज्ञान, आनन्दका पुञ्ज हूं, मैं ज्ञानका ही परिणमन कर सकता हूं, मैं आनन्दगुणका ही परिणमन कर सकता हूं, मैं अपनी ही अन्य सर्व शक्तियोंका ही परिणमन कर सकता हूं, ये सब मेरे परिणमन मात्र मेरे आत्मामें ही होते हैं, मैं आत्मासे बाहर अर्थात् आत्मप्रदेशोंसे बाहर कुछ भी नहीं कर सकता हूं, मेरे आत्माका सत्त्व सबसे अत्यन्त पृथक् है मुझ आत्माका एक भी परमाणु नहीं हो सकता; मेरा कुछ नहीं है, मेरे सुख दुःख मेरे उपयोगसे है, जैसा मैं उपयोग करूं तैसा ही सुख या दुःखका अनुभव है, बाह्यपदार्थसे सुख नहीं, बाह्य पदार्थसे दुःख नहीं, सुख दुःख बाह्य पदार्थसे कैसे होगा, क्योंकि किसी द्रव्यके साथ किसी अन्य द्रव्यका सम्बन्ध नहीं है, इत्यादि निज एकत्वकी दृष्टि वाला उपयोग हो तो सर्व विपदा दूर हो जाती है।

परके ओरके रागसे ही चित्त निर्बल होता है। परकी ओरका राग

क्यों होता है ? अविवेकसे। अविवेक क्यों होता है ? वस्तुके यथार्थ स्वरूपकी भावना न होनेसे। वस्तुके यथार्थ स्वरूपकी भावना तब होती है जब वस्तुके यथार्थ स्वरूपका बोध हो। प्रत्येक पदार्थ मात्र अपने ही अस्तित्वरूप है किसी पदार्थका किसी अन्य पदार्थसे सम्बन्ध ही नहीं है। निमित्तनैमित्तिक भाव सम्बन्धका सूचक नहीं है किन्तु उपादानकी योग्यताका सूचक है कि कौन उपादान किस पदार्थके सान्निध्यमें किस प्रकार परिणम जाता है। इसमें यद्यपि निमित्तभूत पदार्थकी भी विशेषता आ गई कि कैसे पदार्थके सान्निध्यमें उपादान किस रूप परिणमता है तो भी निमित्तभूत पदार्थ जैसा हो उसके अनुरूप परिणमता है तो भी निमित्त भूत पदार्थका उस उपादानसे कोई सम्बन्ध नहीं। निमित्तभूत पदार्थ अपनी विशेषता अपनेमें रखता है और उपादान अपनी विशेषता अपनेमें रखता है। किसीका किसी अन्यसे सम्बन्ध नहीं है। अपनी अपनी योग्यतासे सबका अपना अपना परिणमन होता है। ऐसी वस्तुस्थितिमें स्वातन्त्र्यकी दृष्टि बनाना ही श्रेयोमार्गपर विहार है।

विकल्प ही पाप है। यदि आनन्द चाहते हो तो विकल्प मत करो, पर पदार्थ कैसे परिणमते हैं, परिणमने दो, तुम उसके स्वामी नहीं हो। तुम तो मात्र अपना ही कर रहे हो जो भी कर रहे हो। देख आत्मन् ! तू परमेश्वरस्वरूप है उसकी झांकी सम्यक्त्वमें है। परमेश्वर वह है जो स्वतन्त्र है जिसका ऐश्वर्य ऐसा उत्कृष्ट है कि अपना काम अपनेमें अपने आप हो रहा है कोई पराधीनता नहीं, कोई विकल्प नहीं, कोई संक्लेश नहीं, तो सम्यग्दृष्टि जीव भी वह है जो अपने को स्वतन्त्र प्रतीत करचुका है जिसका विश्वास ऐसा उत्कृष्ट है कि अपना काम अपनेमें अपने आप हो रहा है, कोई पराधीनता नहीं, कोई विकल्प नहीं, कोई संक्लेश नहीं।

संक्लेश क्यों हो। परका कार्य परमें है अपना कार्य अपनेमें है। परके किसी परिणमनसे मेरी हानि नहीं। मेरे किसी परिणमनसे परका कुछ होता नहीं। वास्तविकतापर दृष्टि न दें और उद्दण्ड वृत्तिसे चलें तो उसका परिणाम कलेश ही तो है। क्लेश आवे तब घबड़ाना चाहिये या

धैर्यसे काम लेना चाहिये। घबड़ानेसे तो क्लेश बढ़ेगा, धैर्यसे क्लेश घटेगा। घबड़ानेकी बात आनेपर कैसे धैर्य रखा जासकता है इस प्रश्नका उत्तर है कि सोच लो पर पदार्थ जैसा चाहे होगया उससे तेरेको क्या हानि लाभ है। आखिर घबड़ाहट तो इष्ट वियोग व अनिष्टसंयोग की संभावनामें ही तो होता है। क्या है इष्ट अनिष्ट। पदार्थोंकी कल्पनायें करते जावो और दुःख बढ़ाते रहो। यही रोजगार अनादिसे इस जीवने किया है और इसी रोजगारपर यह जीव तुला रहेगा तो जैसे दुःख भोगता आया है वैसे ही दुःख भोगता रहेगा।

संसारमें सार कहीं नहीं है। संसार पर पदार्थोंका उपयोग ही है। यदि यह आत्मा पर पदार्थोंपर उपयोग न दे तो यही सुखी है, कृत कृत्य है। जहां स्वयं ही रागवृत्तिके यत्न बिना पर पदार्थ प्रतिभासित होते हैं वहां पर पदार्थके ज्ञानसे हानि नहीं।

किसी भी परिस्थितिमें भेद विज्ञान ही सहायक व शरण होता है। इस कारण भेदविज्ञानकी भावना बनाये रहनेके लिये स्वाध्यायका करना बहुत आवश्यक है और अवश्यक तो ध्यान करना भी है। आत्माके अनुभवमें ही सत्य आनन्द है, बाकी सब मोहजाल है। कहना तो हमें भी सुगम औरोंको भी सुगम किन्तु करना कठिन है। अथवा कठिन भी नहीं एक दृष्टिका होजाना ही आवश्यक है, फिर तो जितना सुगम आत्मानुभव है और कुछ है ही नहीं। मैं अपने द्रव्य क्षेत्र कालभावात्मक हूं, अपने ही प्रदेशोंमें हूं चैतन्यमात्र हूं, जानन देखनमात्र मेरा परिणमन है, मैं अपनेमें ही अपने कामको करता हूं वह काम भी मात्र भाव (परिणाम)का करना ही है आदि ध्यान करते करते शरीरका भी भान न रहे, अन्य पदार्थका भी भान नरहे उस समय जो सहजआह्लाद होता है वही आत्माका अनुभव है। आत्मानुभवके लिये निश्चयनयकी दृष्टि बहुत काम बनाती है।

जिस जीवमें विकल्प करनेकी योग्यता होती है वह चाहे ऐसा सोचले कि अमुक बात निबट जानेके बाद कोई विकल्प न करूंगा किन्तु वह बात निबट भी जावे तो भी विकल्प नहीं निबटता, तब विकल्प अन्य जातिका

हो जाता है। इसका कारण यह कि योग्यता तो अभी विकल्प वाली है। इस दुःखसे निवृत्त होनेका उपाय किसी पर पदार्थकी किसी परिणतिकी प्रतीक्षा करना नहीं किन्तु इसका उपाय तो भेदविज्ञानकी भावना और अभेदस्वरूप चैतन्यमात्र आत्मतत्त्वके उपयोगका अभ्यास है।

सारा क्लेश ही विकल्पोंका है। विकल्प न हों फिर क्लेश ही क्या। अरे आत्मन्! इस लोकमें तेरे लिये सारभूत पदार्थ क्या है जिसके लिये तू विकल्प करता है। यह शरीर भी तो तेरे साथ न जायगा। अन्यकी तो बात जाने दो, यह वर्तमान विकल्प भी इस समय बाद लो नष्ट हो गये, जिनमें तू मरा जाता जिनके लिये तू मरा जाता ये विकल्प भी तो तुझमें क्षणभर भी नहीं ठहरते। देख—मन मानी मत कर, श्रीमज्जिनेन्द्र देवाधि देवका हुक्म मान। प्रभुका हुक्म है- कि सर्व परसे विविक्त, परभावोंसे रहित आत्मतत्त्वका यथार्थ परिचय करो।

आत्माकी शान्तिके लिये तो प्राप्त सारा समागम भी छोड़ना पड़े तो छोड़ देना चाहिये और ऐसा किया भी बड़े बड़े महापुरुषोंने, तीर्थंकरोंने, चक्रवर्तियोंने, अनेकोंने! इस वस्तुस्थितिके विरुद्ध कोई कुछ समागम जुटा कर शान्ति चाहे तो वह कैसे ठीक हो सकता है।

प्रत्येक पदार्थ अपने अपने स्वरूपमें है, पर पदार्थोंसे अत्यन्त भिन्न हैं अतएव सब पदार्थ नग्न नग्न ही हैं किसी पर किसीका स्वरूप नहीं। ऐसी स्थिति है तो भी जो पुरुष पर पदार्थके बारेमें ही विकल्प करता रहता है उसपर घोर अन्धकार छाया हुआ है, वह बड़ा ही अज्ञानी है। अज्ञानीके कोई भी सिद्धि नहीं है। साधु वेशमें आकर भी जो परके बिकल्पमें संलग्न रहते हैं वे तो स्वयंके लिये भी हानिकर हैं और परके लिये भी हानिकर हैं।

मैं अमूर्त चैतन्यमात्र आत्मा सिद्ध प्रभुकी तरह प्रभु हूं निश्चयतः, परन्तु मैंने अपनी प्रभुता अज्ञानके आवरणसे ढक दी है। यथार्थ स्वरूप में पदार्थको पहिचानें तो प्रभुता प्रकट होनेमें विलम्ब नहीं लगेगा। मेरा परमाणुमात्र भी तो नहीं है, ज्ञानदृष्टिसे देखता क्यों नहीं है।

अनादि कालसे तू जन्म मरणके अनन्तानन्त प्रसंगोंमेंसे गुजरा

है क्या यह जन्म कोई नित्य या विशिष्ट चीज है ? क्या यह भी अनन्तानन्तोंकी तरह व्यतीत नहीं हो जायगा। यह दृश्यमान सब तेरे लिये निकट भविष्यमें ही कुछ नहीं रहेगा। किसके वास्ते और क्या करके तू शान्ति चाहता है ? प्रियतम चेतन ! कुछ तो विवेकसे काम ले। विवेकका नाम जानना नहीं है, किन्तु विशेष रूपसे दो कर देनेको विवेक कहते हैं। "विष्लृद्वैधीकरणे" धातुका शब्दरूप है विवेक। सो यदि ज्ञानमें पदार्थ इस स्वरूपसे दीखते हैं कि सब पदार्थ न्यारे न्यारे अस्तित्वमें हैं तो यह जानना भी विवेक हो गया, क्योंकि इस जानने जाननेमें दो अर्थात् जितने स्वरूपास्तित्व हैं उतने ही कर दिये। वस्तुतः दो करना होता ही नहीं; किन्तु दो हैं उसे दो जानना होता है। दोसे मतलब दो का ही नहीं, किन्तु जितने पदार्थ हैं उतनेसे मतलब है।

घर छोड़ा, परिवार छोड़ा, धन छोड़ा फिर भी परके उपकारके लिये या अपना नाम रखनेके लिये लोगोंकी प्रवृत्तिका या वैभवके संचय व विनाशका कोई विकल्प रखते हो उसके बराबर मूर्ख तो गृहस्थोंमें भी किसीको नहीं कहा जा सकता। गृहस्थ तो बेचारे घर परिवारके बीच हैं तिसपर भी निष्प्रयोजन आकुलतायें कम किया करते हैं।

अहो निर्विकल्प महापुरुषो ! तुम मुमुक्षुओंके आराध्य हो, तुम्हारे पदका अनुसरण कर मुमुक्षु भी सन्मार्गमें लग जाते हैं। तृष्णाके विनाश बिना सन्मार्ग नहीं मिलता। स्वतन्त्रताकी सिद्धि ही सन्मार्ग व सन्मार्गका फल है। स्वतन्त्र आत्मतत्त्वकी स्वतन्त्रताकी उपासना स्वतन्त्रता की सिद्धिका स्वतन्त्र उपाय है।

आत्मा स्वतन्त्र है, परतन्त्र तो कल्पनामें बनता है। प्रत्येक पदार्थ जब मात्र अपने अपने स्वरूपमें है फिर तो कोई द्रव्य किसी द्रव्यके द्वारा परिणमाया जाता तो होता नहीं, परन्तु अज्ञानी जीव खुदको परका कर्ता मानते हैं इस मान्यतामें अपनेको परका अधिकारी समझते हैं। जब अपनेको परका अधिकारी समझा तो यही वासना रहती है कि जैसा मैं चाहूँ तैसा ही यह परिणमे किन्तु ऐसा होना अशक्य है, परकी परिणति

उसी परके आधीन है क्योंकि वह पर मात्र अपने स्वरूपमें है। जब इच्छा के अनुसार परमें परिणमन न देखा तब असीम संक्लेश करता है। संक्लेशमें सिवाय अकल्याणके और कुछ रखा नहीं। अतः मोही जीव कल्पनामें ही परतन्त्र बन बन कर दुःखी होता है।

जो आनन्द आत्माके अनुभवमें है वह क्या परके विकल्पमें हो सकता है। परके विकल्पमें हुआ क्लेश आकुलतासे ही भरा हुआ है। परका जहां रञ्च भी विकल्प नहीं है ऐसे शुद्ध ज्ञायक उपयोगमें परितः अनुपम आनन्द भरा हुआ है। यही आनन्द कर्मोंके क्षयका निमित्त है। क्लेशसे कर्मक्षय नहीं होता, किन्तु आनन्दसे ही कर्मक्षय होता है, हो वह आनन्द सहज। यह आनन्द अनुभवगम्य है, न तो इसका वर्णन शक्य है और न इसका आविर्भाव मन वचन कायकी क्रियाओं द्वारा शक्य है। यह तो सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान व स्वाचरणकी वृत्ति होने पर दृष्टिके अभावमें सहज ही प्रकट होता है।

किसी भी समागमको पाकर उसमें फूले न समाना अज्ञानता है। इस अज्ञानताका परिणाम क्लेश है, संक्लेश है। दुनियामें कितने प्रकारके देहधारी हैं। प्रत्येक प्राणी प्रायः अवधृत देहमें आत्मबुद्धि कर रहा है और इसी कारण देहसेवामें ही अपना उपयोग लगाये रहता है, आगे पीछेकी कुछ भी सुध नहीं रखता। इस देहासक्तिका परिणाम नानाविधि कुदेहोंमें बस बसकर आकुलता पाना ही है। अहो कितना यह उच्च जन्म जिसमें इन्द्रियां व मन अपना ठीक काम कर सकती है, जिसमें यह मनुष्य अपना विचार दूसरोंके सामने स्पष्ट शब्दोंमें रख सकता है। दूसरोंका विचार स्पष्ट शब्दोंमें सुन सकता है। उच्च विचार, उच्च आचरण इस मनुष्य जन्ममें किये जा सकते हैं। सदाके लिये दु खोंका अन्त कर देनेका उपाय इस मनुष्य जन्ममें ही बनता है। कहां तो ऐसा उच्च जन्म और कहां लगाया जा रहा है ऐसे नीच कर्मोंमें जिनका कि जोड़ पशुजन्ममें भी हो सकता था जैसे—मोही पुरुषका अधिक प्रसंग करना, परवस्तुकी लालसामें चिन्ताशील बने रहना, विषयाशाके वश होकर परतन्त्रताका दुःख सहना, परकी परिणति अपनी

इच्छाके अनुसार चाहना, क्षुधा तृषाकी वेदनाकी कल्पनासे बढ़ाकर योग्यायोग्यविवेक रहित होकर अनियमित यथा तथा भोजनपानसे अपनी व्यथाको मेटनेका यत्न करना आदि। हे आत्मन! देख अपनेसे छोटे प्राणीको। मनुष्योंमें अनेक मनुष्य ऐसे हैं कि श्रम करके परेशान हो जाते हैं फिर भी पेट भर भोजन नहीं मिलता, पशु तो प्रायः पिटते भार लदवाते मांसके लिये मारे जाते हुए पाये जाते हैं, खानेको भी उन्हें ठीक नसीब नहीं होता। किन्हीं पशुओं को नसीब होता है तो प्रायः जब तक उनसे कोई स्वार्थ सधता है तभी तक थोड़ा या बहुत, विरस या सरस। शूकर तो विष्टामें ही अपना बड़ा भाग्य समझते हैं, गधे घूरेमें ही अपनी चिरा सस देखते हैं। हे आत्मन यदि तू ऐसा होगा तो क्या गौरव रहेगा जब था तब क्या गौरव था। अब तो मन घड़न्त कल्पनाओंको त्यागकर अपने शुद्ध स्वरूपकी ओर लग, सत्य आत्मोद्धार कर।

किसी भी पर पदार्थसे आत्माका हित तो होना ही नहीं, फिर परका विकल्प करके आत्मा क्या भला पा लेगा। हाय यह विकल्प बड़ी अज्ञानता है। वह क्षण धन्य है जिस क्षण पर पदार्थकी ओर दृष्टि न रहे और परम समतामृतका झरना झरे।

मैं अपने प्रदेशास्तित्व स्वरूप हूं मेरा काम मेरा परिणमन ही है इसका साधन मेरा परिणाम ही है इसका फल मैं ही तुरन्त अनुभव रूपमें पालेता हूं, यह सब कार्य मुझमें ही होता है। मेरा मैं हूं, मेरा मुझसे बाहर कुछ नहीं है। बाहरकी किसी चीजमें ममत्वभाव करना यही संसार है, यही क्लेश है, यही अपवित्रता है।

पर पदार्थ उसमें ही परिणमो, जैसा परिणमना हो परिणमो, उसमें मेरा क्या जाता! कुछ भी नहीं। मैं मात्र अपने को ही देखूं, जैसा हूं तैसा ही देखूं इसके अतिरिक्त कुछ मिथ्या विकल्प न करूं। यह जीवनमें सर्वोपरि लाभ वाला व्यवसाय है। ॐ तत् सत्।

जगत मेरा मेरा विभाव है, मोक्ष मेरा मेरा स्वभाव है। मेरा सब काम यहीं है। वस्तुतः मुझमें कोई टोटा ही नहीं। जिसे लोग टोटा

समझते वह टोटा नहीं , टोटेका विकल्प टोटा है । उस टोटेकी पूर्ती निर्विकल्प भावसे होती है ।

ॐ शुद्धोऽहं , बुद्धोऽहं , नित्योऽहं , निरञ्जनोऽहं , ज्ञाताऽहं, दृष्टाऽहं टङ्कोत्कीर्णवन्निश्चलोऽहं , परमात्मस्वरूपोऽहं । ॐ ॐ ॐ नमः सदाशिवाय ।

राग द्वेषके कारण आत्मघात होता रहता है इस ओर प्रायः लोकोंकी दृष्टि नहीं किन्तु जलकर डूबकर आदि विधियोंसे कोई मरे तो उसे आत्मघात कह देते हैं वस्तुतः वहां भी आत्मघात उस जातीके महान राग द्वेष के कारण हुआ है । शरीरके वियोगसे आत्मघात नहीं होता । अहो आत्मन् ! तुम प्रतिक्षण आत्मघात कर रहे हो । इस आत्मघातसे बचने का उपाय विकारमें उपयोगका न फसाना ही हो सकता है । यथार्थ श्रद्धा ही जीवका परम सहायक मित्र है । यदि यह मित्र साथी न बने तो जीव का उद्धार कभी हो ही नहीं सकता । अच्छी परिस्थिति , खोटी परिस्थिति सब परिस्थितियोंसे पार करके जीवके शान्तिके मार्गसे लेजाकर परमानन्द के उपवनमें लेजानेका सहजानन्दका अमृत पिलाते रहना सम्यग्दर्शनकी ही कला का फल है ।

कितनी भी विपदायें हों क्या हैं वे । पर पदार्थका परिणमन परमें ही है तुममें तो है नहीं और तुम मात्र तुममें ही हो सो अपने आपमें आप ही विकल्पकर मानता है कि मुक्त पर विपदाका भार आपड़ा है , भार कुछ है नहीं । अरे आत्मन ! अपने आपको तो देख तू चैतन्यमात्र रूप रस गंध स्पर्श रहित सबसे निराला परमात्मस्वरूप है । कुछ कमी या कुछ क्लेश है ही नहीं है । तू परिपूर्ण आनन्दराम है । परको पर जानकर उनका बिल्कुल विकल्प हटा ले तू तो स्वयं भगवान जैसे ऐश्वर्य का स्वामी है । प्रिय मत मान परका सम्बन्ध ही वैरी है । मिलेगा कुछ नहीं परके सम्बन्धसे । तू तो एक है , स्वतन्त्र है । अपनी स्वतन्त्रताको देख , परका सम्बन्ध पूर्णरूप से दूर कर । कोई भी समागम , सामग्री तेरी सहाय नहीं कर सकता है । जब अभी ही जब कि समागम है धनकी चोटकी तरह अन्तर्व्यथाका

कारण बन रहा है तो भविष्यमें क्या कुछ तेरा उद्धार कर देगा। अरे आत्मन्! आत्माका घात न करो, केवल अपने परिणामनको ही उपयोगमें ग्रहण करो, परको तो तू जड़से ही दूर कर अर्थात् उपयोगभूमिमें आने ही मत दे।

समय गुजर रहा है बड़ी तेजी से। जो समय गया वह वापिस आने का नहीं है। तू परके विकल्पमें फंसकर क्लीव बन रहा है, कायर बन रहा है, पराधीन बन रहा है। देख तो अपनी सत्य प्रतिष्ठा। आपकी प्रतिष्ठा अपने आपमें है, अपने आपके करनेसे है। तेरी यहां कोई बात पूछने वाला नहीं है, भ्रममें मत मरा जा। जो कोई पूछता है अपनी कषायको पूछता है। तुझे तो कोई जानता ही नहीं है। जो तू है उसका नाम नहीं, जिसका नाम रक्खा है वह तू नहीं। तू अपनेसे रिशता जोड़, परका सम्बन्ध बिलकुल दूर कर।

अपने अनुभवके अमृतका पान कर, सारे क्लेश अभी ही यों ही इसी क्षणमें भागे जाते हैं। विकल्पोंमें योग्यता नहीं है कि वे आत्मामें घर कर सकें किन्तु यह मालिक आत्मा ही जब सुस्त पड़ा है तो इन विकल्पों का मौज बन गया है। अरे आत्मन् जरा तो अन्तरमें अपनेको देख। सुगम तो इलाज है और सदाके लिये निरामय होते हो फिर भी करते न बने तो तेरा ही दुर्भाग्य है। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

मनुष्यजीवन का सदुपयोग अन्तरङ्ग बहिरङ्ग तपमें लीन होकर आत्मानुभवके आनन्दका लाभ करलेना है। यदि यह ही न कर पाया और सारे बाह्य साधनजुटाये तो क्या किया, कुछ भी नहीं। विषयोंका आराम भी संक्लेश है और क्लेशका वेदन भी संक्लेश है। जिस प्रसंगमें संक्लेश हो वह प्रसंग छोड़ने योग्य ही है। परका उपयोग, परकी दृष्टि, परका आकर्षण ये सब आत्माके लिये अहित भाव हैं। इनसे लाभ तो जरा भी नहीं, हानि ही हानि है। हां देवशास्त्र गुरू रूप परके उपयोगसे किसी अपेक्षा लाभ है सो वहां भी आत्मपरिणामकी शुद्धिसे लाभ है।

मैं मेरा ही परिणमन कर पाता हूं, मेरी दुनियां मैं ही हूं। मेरेसे

बाहर मेरा काम नहीं। जब मेरेसे बाहर मेरा कुछ नहीं फिर यह उपयोग बाहर क्यों दौड़ता है। यह अंधेरगर्दी क्यों लद रही। हे नाथ ! तुम धन्य हो कैसी सद्बुद्धि आपमें हुई कि जिसके विस्तारमें सर्वज्ञता पाई सर्व मलोंसे मुक्त होकर निरञ्जन हुए। अहो सारा चमत्कार त्याग ही का है। त्याग भी क्या है ? कुछ नहीं, बस एक उपयोगकी दिशा ही बदल देना है वही वास्तविक त्याग है। बाह्य किसी पदार्थको यह आत्मा ग्रहण तो किये हुए है नहीं केवल विकल्प बना रखा है कि अमुक पदार्थ मेरा लाभकारी है अथवा अमुक मेरा है, और तो क्या चार शब्दोंसे बने हुए नाममें भी कल्पनावश अपनायत कर रखी है बस इसी सब भ्रमजालका मिटा देना ही वास्तवमें त्याग है। सम्यग्ज्ञान होनेपर जो ग्रहण करने योग्य है व ग्रहण कर लिया जा चुका होता है और त्यागने योग्य है वह त्याग कर दिया जा चुका हो जाता है। अध्रुव तत्त्व मैं नहीं हूं, मैं ध्रुवस्वरूप हूं एक इसी आधारपर अध्रुव भावोंको छोड़कर एक ध्रुवस्वरूपमें ही रम जाना यही कल्याणका बीज है। ॐ तत् सत् परमात्मने नमः। ॐ नमो भगवते शिवस्वरूपाय। ॐ शुद्धं चिदस्मि। शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम्। ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ। ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ। शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं तं देव माप्तं शरणं प्रपद्ये।

सब कुछ ठीक है, गलत कुछ नहीं है, एक कुबुद्धि ही गलत है। जो होता है वह ठीक होता है, जैसा उपादान है तैसा निमित्त सन्निधान है, निमित्तनैमित्तिक पद्धतिसे वह होता ही है, गलत क्या है, जो होता है वह ठीक होता है। कुबुद्धिका काम भी ठीक होता है, किन्तु कुबुद्धिमें पर पदार्थके प्रति जो धारणा है वैसी बात पर पदार्थमें है नहीं अथवा कुबुद्धिमें निजके प्रति जो धारणा है वैसी बात निज पदार्थमें है नहीं इसलिये कुबुद्धिको गलत कहा जाता है। वैसे तो उपादान जैसा है निमित्तसन्निधान जैसा है उसके परिणाममें कुबुद्धिपरिणति हुई सो होना ही चाहिये, गलत क्या हुआ। हां अशुद्ध संस्कार व मोहकर्मके उदयके निमित्तमें भी सुबुद्धि उत्पन्न हो तो वह गलत काम होगा। जो होता है वह ठीक

होता है। किसे देख कर क्षोभ करना।

लोकमें अन्याय कभी नहीं हो सकता। मोहमें जीवोंको कोई काम अन्यायका दीखता है। कार्य निर्माण विज्ञानविधिके वेत्ता इस रहस्यको जान सकते हैं। किसी जीवके अशुभकर्मका उदय आया उस निमित्तके अवसरमें उसके अशुभ परिणाम हुए उसने अपने स्वार्थकी सिद्धि की। वह काम किसी दूसरेको प्रतिकूल लगे तो इसका तो किसीने ठेका नहीं लिया कि दूसरेको प्रतिकूल न लगे। लगता है दूसरेको प्रतिकूल तो उस दूसरेका ऐसा ही कषाय प्रकृतिका उदय है उस निमित्तके अवसर में उसका ऐसा ही कषाय भाव हो रहा है। लो, यहां भी ठीक ठीक काम हो रहा है। अन्याय क्या है। जीव जैसा परिणाम करता है वैसा कर्म-बन्ध अथवा कर्मनिर्जरादि होते हैं। किसी जीवने तीव्र मायाचार किया उसके तीव्र पापकर्मका बन्ध उसी समय होगया। जब पापकर्मका उदय आया असाताका अनुभव होने लगा। बताओ अन्यायकी बात क्या हुई। लोकमें पदार्थोंका परिणमन चलता रहता है। सर्वत्र उपादान निमित्तकी पद्धति है। उसमें सबका हितभावसे ठीक ठीक काम होता है। वह काम किसीको आकुलताका कारण हो तो इसके लिये क्या किया जाय। जिसे आकुलतासे मुक्त होना है उसे चाहिये कि अपना परिणमन विवेकपूर्ण बनावे। उसको उसके परिणामके अनुकूल न्याय अवश्य मिल जावेगा।

यह मनुष्यजन्म बड़ी कठिनाईसे मिला है। इसका दुरुपयोग करना बड़ी बेवकूफी है। त्यागवृत्तिमें जीवन व्यतीत हो यही इसका सदुपयोग है। वास्तविक त्यागवृत्ति तो यथार्थज्ञानका उपयोग है और इसके परिणाम में होने वाली बाह्य पदार्थविषयक उपेक्षा भी त्यागवृत्ति है। त्यागवृत्तिमें बढ़ो और ऐसे बढ़ो कि अत्यन्त निष्परिग्रहता हो जाय। यदि इतना नहीं हो सकता इतने तक तो बढ़ ही जाना चाहिये कि उन्हें जो कि गृहत्यागी हैं कि केवल वस्त्र व एक जलपात्र व कोमल जीवदयासाधन ही रहे इसके अतिरिक्त और कुछ रहे तो एक थैला जिसमें पढ़ने लिखनेका

सामान आजाय व शिरदर्द नेत्राञ्जन आदिकी दो चार छोटी औषधिकी शीशी आजाय और यह सब खुद लटकाकर या लेजाकर चला जा सके इतना भार हो। कमसे कम एक उपवास कर लेनेका सदा उत्साह व साहस रखकर आहारकी चिन्तासे तो मुक्त ही रहे। ऐसी निरपेक्षचर्यासे रहकर आत्मध्यानके अवसर पाये जा सकते हैं।

आत्मा जिसका कि अनुभव करना व अनुभवमें अधिक समय लगाना त्यागी बननेका उद्देश्य है वह आत्मा तो सतत अन्तः प्रकाशमान है परन्तु अध्यवसानके आश्रयरूप पदार्थोंका समागम बना रखा है ऐसी हालतमें आत्माका अनुभव कैसे प्राप्त हो। आत्माका अनुभव तो सदा आनेको तैयारीमें बैठा हुआ है। हम हीने रागद्वेष कल्पनावोंका आश्रय सोच रखा है और सर्वोच्चविभूति आत्मानुभूतिसे वञ्चित अपने को कर रखा है।

मात्र अपने आपका भरोसा निर्वाध मार्गपर निर्वाध लेजाने वाला है। जो अपने आपसे हो सकता है उसीकी बात बोले। अधिकारवाह्य बातमें पड़नेसे ही आकुलता एवं विपदा आती है। कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थ का न अधिकारी है, न कर्ता है, न भोक्ता है और न कुछ सहायक है फिर भी उच्चपदार्थके प्रति आकर्षण रहना यह आश्चर्य व अफसोसकी बात नहीं है तो और क्या है।

आत्मन्! तू जान, जिस चाहेको जान, चाहे परको जान, चाहे निजको जान, किन्तु जान यथार्थ स्वरूपमें, प्रत्येक पदार्थ अपने आपके परिणमनसे परिणमता है, हां यह परिणमने वालेकी ही कला है वह किस सन्निधानमें किसरूप परिणम जाता है। परिणमने वालेकी कलाको निमित्तमें जोड़ देना यही तो मिथ्या है।

धन्य है वह उपयोग जिसमें परके अपवाद व हानिकी बात नहीं बसती जिसके प्रतापसे कभी ऐसा भी हो सकता कि उपयोगमें कोई भी पर पदार्थ न बसे। उपयोगमें वह पदार्थ रहनेसे आत्माकी हानि नहीं, किन्तु रागीजीवोंके रागका संस्कार व राग वर्तता है इस कारण पर पदार्थके

उपयोगमें आते ही उसके प्रति इष्ट व अनिष्ट कल्पनाकी संभावना पूरी पूरी रहती है अतः यह ही उत्तम उपाय है कि ऐसा निज विषयक रुचि, उपयोग बनावे कि पर पदार्थको उपयोगमें बसनेका अवसर प्राप्त न हो।

आज कल भी काल हमारे सम्यक्त्वमें बाधक नहीं। सम्यक्त्व कालसे नहीं होता किन्तु जिस समय भी सम्यक्त्व होजाय उस कालमें काल-लब्धिका व्यवहार होना अपने उपयोगको मांजनेकी नितान्त आवश्यकता है। हम अपने आपमें ही तो किया करते जो कुछ भी करते, अपनेसे बाहर अपना तो कोई कुछ है ही नहीं फिर बाहर कुछ ढूंडना व्यर्थकी विडम्बना नहीं तो और क्या है। हे आत्मन् तू देख, अपनेको देख, अपनेमें देख, अपने द्वारा देख, इसका प्रयोजन भी तेरा ही है तू अपने लिये देख। देख, तेरी दुनियां इतनी ही है जितना कि तू है, तेरेसे बाहर तेरा क्या किसीका भी कुछ उसके स्वरूपास्तित्वसे बाहर है नहीं। जैसा स्वरूप है तैसा मान, न हो तो विपरीत बात कह।

शान्तिका मार्ग कितना सरल है। पदार्थ जैसा है तैसा मान लो इतना ही तो करना है। इसमें कष्ट क्या है। पदार्थ तो जाननेमें आते ही हैं। पदार्थोंका तो ज्ञेयत्व स्वभाव है। आत्माका ज्ञातृत्व स्वभाव है। अब अड़चन ही क्या है। किसी पदार्थका राग न छूटे तो न छूटो उसकी चिन्ता क्यों करना हां जिसपर राग जाता है उस पदार्थका भी जैसा उसका वास्तविक स्वरूप है तैसा जान जरूर लो और जब जब उस पर उपयोग जाय सत्य सत्य जानकारी रखो। वह सत्य क्या है? यह पदार्थ इतने ही स्वरूपमें है इससे बाहर इसका कुछ नहीं है, यह पदार्थ इतने ही स्वरूपमें है इससे बाहर क्या? एक इस सत्यका आग्रह करलो कि सत्य सत्य ही जानना है फिर तो कल्याणमें कुछ कठिनाई ही नहीं। कल्याण भी और है ही क्या? आत्माका स्वभाव जानना है वह सर्वत्र सत्य जानता रहे इससे अधिक और करना ही क्या है और ऐसा करनेमें हे आत्मन् तेरा गिरता क्या है। सत्य सत्य जानकारी रख, यही तेरा व्रत है, यही तेरा तप है, यही तेरी समाधि है, यही तेरा बड़प्पन है,

यही कल्याण है, यही सब मंगलोंमें एक मंगल है, यही सत्य शरण है, यही सच्चा मित्र है व यही तेरी सर्व सिद्धि है।

भाव खोटे होते हैं उनका भी तू ज्ञाता रह, क्योंकि तू क्या करेगा। परम्परया मलिनता का संस्कार होनेसे योग्यता ऐसी ही है और सामने कर्मका उदय निमित्त है, तेरी स्वच्छताके ही कारण विभावोंकी भी झलक हो जाती है। अरे आत्मन्! तू उसका भी ज्ञाता रह। देख, यह विभाव औपाधिक है, मैं तो नहीं चाहता और यह विभाव होता है। बिन चाहे होने वाले विभावसे तेरी हानि नहीं है, घबड़ा मत, हां यदि तू ही विभाव का पक्ष लेने लगेगा तो तू खुद ही डूबेगा, तेरा बचाने वाला कोई उपाय हो ही नहीं सकेगा इस ढंगमें रहकर।

इसी प्रकार मन्द कषायमें होने वाले शुभ भावका भी तू ज्ञाता रह। इन भावोंमें भी आत्महित नहीं है। शुभ भाव भी तो किसी प्रकारका राग ही तो उत्पन्न करते हैं। राग मलीमसता है उसमें तेरा स्थायीपद अथवा अनाकुलपद तो नहीं मिल सकता। हे आत्मन्! तू शुभ भावका भी ज्ञाता ही रह। देख यह विभाव औपाधिक है। मैंतो नहीं चाहता और यह विभाव हो जाता है। बिन चाहे होने वाले विभावसे तेरी हानि नहीं है। घबड़ा मत या बेसुध हो मत। तेरी कोई क्षति न होगी यदि ज्ञानका सदुपयोग करेगा। हां यदि तू ही विभावका पक्ष लेने लगेगा तो तू ही खुद डूबेगा, तेरा बचाने वाला कोई उपाय हो ही नहीं सकेगा इस ढंगमें रहकर।

अहो शुभ भावकी भी अन्तरङ्गसे चाह न हो इस परिणतिमें कितना विशेष बल प्रकट है। शुभ भावसे भी बढ़कर अनुपम किसी विलक्षण भावका आनन्द पाये बिना शुभभावसे विरक्त कोई होले यह हो ही नहीं सकता। आत्मा तो अनुपम आनन्दका पुञ्ज है ही। कोई इसे लेना ही नहीं चाहे तो यह आनन्द जबर्दस्ती तो अपना अनुभव करनेके लिये फिरता नहीं है। अपनी गलतीका आप दुःख भोगे इसमें क्या अन्याय है?

हे आत्मन्! पापके उदयसे दुःख आपड़े तो उसका भी तू ज्ञाता रह।

दुःख भी क्या है एक कल्पना है वह भी औपाधिक है। तेरा वश क्या, तेरा वश तो ज्ञाता बननेमें है सो दुःख भावका भी ज्ञाता रह। हे आत्मन् पुण्यके उदयसे सुख आ पड़े तो उसका भी तू ज्ञाता रह। सुख भी क्या है एक कल्पना है। वह भी औपाधिक है, तेरा हितरूप नहीं है उसमें मग्न मत होओ। सच जान यह सुख तुमपर घोर विपत्ति डालनेके लिये मिला है उसमें मग्न मत हो। इस सुख भावका भी ज्ञाता रह।

क्षुधा तृषा शीत उष्ण आदिकी वेदना तब सहा जाना कठिन लगता है जब आत्मरुचि तो नहीं है और शरीरकी ओर दृष्टि बनी रहती है। उन साधुवोंको वेदना सहन करलेना या नहीं मालूम पड़ना सुगम है जिन महाभागोंके अनवरत आत्मरुचि रहती है। जो आत्माके अनुभवमें आनन्द है वही वास्तविक आनन्द है। और तो कम आकुलताओंका नाम आनन्द रख लिया गया।

दिसम्बर १६५६

हे आत्मन्! अब तक अनन्तों भव पाये व विताये। उसी तरह यह भव भी निरर्थक बीत गया तो बता आगे क्या करेगा। असंज्ञी हो गये फिर तेरा वश ही क्या चलेगा। आजका जीवन कितने उजेलेका जीवन है मनकी बात दूसरेको कह सकते हो। दूसरेकी कही बातको अच्छी तरह समझ सकते हो। खाने पीनेके मानवोचित्त साधन हैं। मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत देव शास्त्र गुणका समागम पाया है। उचित अनुचितके निर्णय करनेकी शक्ति है। ऐसे उत्तम साधनोंसे भी यदि लाभ न ले पाया तो बता कब हितका कार्य कर सकेगा।

एक आत्माकी ही दृष्टि हो, एक आत्माकी ही रुचि हो, एक आत्मतत्त्व में ही रमण हो। इससे बढ़कर अन्यकुछ है ही नहीं। कल्पित धनी, कल्पित सुखी अन्य मोही पुरुषोंमें दृष्टि देकर उनसे मायामय वचनोंको सुनकर संतुष्ट होकर दुर्लभ समय गमा रहे हैं वे तो करुणाके पात्र हैं उनकी होड़ तो अज्ञानी किया करते हैं। तू तो सब कुछ जानता जा, किसी रागमें मत पड़।

वैभव सब मायाजाल है। लोग भी सब मायाजाल हैं यह शरीर भी मायाजाल है। यह विभाव भी मायाजाल है देख, इन स्कन्धोंमें जो परमाणु द्रव्य है, त्रैकालिक है, अखण्ड है वह सत्य है। देखइन जीवोंमें जो शुद्ध ज्ञायक स्वरूप है, त्रैकालिक है, अखण्ड है वह सत्य है। अन्य भी कुछ अरूपी द्रव्य हैं वे सत्य हैं बाकी सब तो मिथ्या है। वह भी परिणमन है इसलिये भूंट तो नहीं है किन्तु मात्र एक द्रव्यकी लीला नहीं है इसलिये मिथ्या है। समस्त मिथ्या जालसे उपयोग हटाकर सत्यमें ही उपयोग रहे यही परम योग है।

विश्वके समस्त पदार्थ सामान्यविशेषात्मक हैं। उनके यथायोग्य विशेष रूपसे ही मोहीजीव परिचित होते हैं और वह भी अपने कषायके अनुकूल कल्पनाओंमें विशेषरूपका यथार्थ परिचय सामान्यस्वरूपका परिचय होनेपर ही हो सकता है सामान्यरूपसे परिचित जीव सम्यग्दृष्टि ही हो सकते हैं। ज्ञानी जीव सामान्यस्वरूपसे परिचित होते हैं अतः विशेषरूप का परिचय होने पर भी वे विशेषकी ओर आकृष्ट नहीं होते, उनको रुचि सामान्यस्वरूपकी ओर होती है। पदार्थका सामान्यस्वरूप नित्य, अनाद्यनन्त एवं निरपेक्ष है और पदार्थका विशेषरूप अनित्य, सादिसान्त एवं सापेक्ष है, सामान्यरूपके उपयोगके कालमें आकुलता नहीं है किन्तु विशेषरूपमें उपयोग लगानेके कालमें आकुलता होती है। यह प्राणी विशेषरूपसे परिचय व व्यवहार करता है वह पद्धति अज्ञानीकी है, इस पद्धतिका परिणाम संसार परिभ्रमण ही है।

मैं आत्मा उपयोग द्वारा अपने आपमें ही रहूं। जो आनन्द व सत्य कार्य इस आत्मानुभवमें है अन्यत्र होता ही नहीं। सदैव आत्मानुभवमें रहूं। इससे निकल कर क्षण भी मेरा समय न बीते। ऐसी स्थिति पानेके लिये सर्व पर पदार्थोंका त्याग कर देना होगा, वह करना ही पड़ेगा, वह किया ही जायगा। उसमें जो मात्र उपयोग द्वारा त्यागा जा सकता है वह उपयोग द्वारा त्याग दिया जायगा और जो हटाकर त्यागा जा सकता है वह हटाकर त्याग दिया जायगा।

अहो सारा लोकका वैभव भी इकट्ठा हो जाय तो क्या हुआ पुद्गल

पिण्ड ही तो है। उससे आत्माको क्या मिलेगा। अरे इकट्ठा क्या करना इकट्ठा तो तीनलोकके अन्दर है ही। उस सबको मानले कि यह सब मेरा ही है, कल्पित घरके मकानमें भी तो माननेसे ही तो अपनी दुनियावी गाड़ी चला रहा है तीन लोकमें इट्ठे हुए पदार्थोंको भी मानकर अपना मन भर ले। खूब भरले ताकि आगेकी दिक्कत मिट जाय। अरे बावरे अनहोनी बातको मत ललचा। तेरी होनीकी बात तेरेमें ही होती है। अतः सर्व पर पदार्थको अहित ही समझ।

अब इस प्रकार अहोरात्रचर्याका यत्न होना चाहिये—

प्रातः सूर्योदयसे १॥ घंटा पहिले से सूर्योदयके पश्चात् १५ मिनट तक	सामायिक व प्रतिक्रमण
पश्चात् या अगले प्रोग्रामके बाद १५ मिनट तक	देवभक्ति
पश्चात् १॥ घंटा	पर्यटन, देवसेवा, आसन
पश्चात् १ घंटा	प्रवचन, भजन स्तुति
पश्चात् १ घंटा	सामाजिक अल्पवार्ताके अनन्तर आध्यात्मिक स्वाध्याय
पश्चात् ११। बजे तक	बुद्धि चर्या, विश्राम
११। से १ बजे तक	सामायिक
१ से २॥ तक	लेखन
२॥ से ३॥ तक	स्वाध्याय
३॥ से ४॥ तक	शास्त्रसभामें सम्मिलित होना या स्वाध्याय
४॥ से ५॥ तक	सेवा व विश्राम
५॥ से सूर्यास्तसे आधा घंटा पहले तक	स्वाध्याय
पश्चात् ॥ घंटा	पाठ भजन
पश्चात् ॥ घंटा	शंका समाधान या कदाचित प्रवचन
पश्चात् ६॥ बजे तक	स्वाध्याय
पश्चात् ॥ बजे तक	विश्राम, शयन
पश्चात् सूर्योदयके १॥ घंटा पहले तक	स्वाध्याय

उक्त प्रोग्राममें प्रवचन करने व समाधानादि बतानेके व अहारके पश्चात् १० मिनट तक श्रावकके घर बोल सकनेके अतिरिक्त मौन रखा जावे सिर्फ मध्यान्हकी सामायिकसे पहिले किसी सेवाकार्यमें बोलना रख लिया जावे तो उस समय पर दिनमें ४५ मिनट तक बोल सकना रहेगा। गुरुजीके समक्ष बोलने की छूट। समयानुसार उक्त कार्यक्रममें अल्प परिवर्तन भी किया जा सकता है। यह करीब करीबका समय है कुछ मिनट कम बढ़ हो जाय यह बात उपलक्ष है फिर भी ध्यान समयका रखा जावेगा।

स्वरूपध्यानके लिये निम्नलिखित ३ प्रकारकी धारणायें सहायक हैं–

(१) जो भी स्कन्ध दीखता है अर्थात् ज्ञात होता है उसे क्षणिक व संयोगी पर्याय होनेके कारण मायामय समझकर उनमें उपयोग न लगाये और उनमें वर्तने वाले परमाणुओंको भिन्न भिन्न स्वरूप वाले जैसे हैं वैसे जाने। इस जाननेके परिणाममें स्कन्ध उपयोगमें न रहेगा। फिर मोह, राग, द्वेष कैसे हो सकते हैं। मोह, राग, द्वेष ही दुःख है। यह न रहा तो आत्मवैभव प्रकट ही है।

(२) जिन जीवोंमें मोह होता है, राग होता है या द्वेष होता है जरा उनका स्वरूप भी तो सही सही देख लिया जाय। प्रत्येक जीव अपने अपने प्रदेशोंमें ही परिणमते हैं, सभी जीव अपने अपने द्रव्यक्षेत्र काल भावसे ही हैं। मैं भी अपने प्रदेशोंमें ही परिणमता हूं अतः कोई जीव किसी अन्य जीवके सुख दुःख आदि किसी भी परिणमनका कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं, अधिकारी नहीं। फिर किसी भी जीवमें मोह, राग, द्वेष क्यों हो।

(३) जो कुछ जाननेमें आता है प्रायः पर्याय की प्रधानतासे जाननेमें आता है। उस पर्यायके बारेमें विचार करे कि यह पर्याय किस गुण (शक्ति) की है! इसका उत्तर जो आवेगा अर्थात् जो गुण ज्ञात होगा वह गुण तो उपयोगमें मुख्य हो जावेगा और पर्याय गौण (निमग्न) हो जावेगा। फिर उस गुणके बारेमें विचार करे कि यह गुण किस द्रव्यका

है इसका जो उत्तर आवेगा अर्थात् जो द्रव्य सामान्य ज्ञात होगा वह सामान्य तो उपयोगका मुख्य विषय हो जावेगा और गुण गौण होजावेगा। इस विचारसे दृष्टि पर्यायसे हटकर गुणपर आई फिर गुणसे हटकर द्रव्य पर आई। सामान्यकी दृष्टिमें मोह, राग, द्वेष नहीं रहता।

संसारमें दुःख मोह, राग द्वेष व कल्पनाओंका है। इनके मिटनेका उपाय सम्यग्ज्ञान है। उक्त तीनों बातोंमें वस्तुके सत्यस्वरूप का पता पड़ जाता है। ॐ शुद्धं चिदस्मि।

आनन्द तो निवृत्तिमें है, प्रवृत्तिमें शान्ति कहां। वास्तविक निवृत्ति सर्व निवृत्त निज आत्मस्वभावकी दृष्टि बिना नहीं हो सकती।

अहो मैं तो सनातन चैतन्यमात्र हूं। मेरा कोई परिणमन भी दूसरे क्षणका साथी नहीं होता तो अन्य पदार्थोंकी तो अब चर्चा ही क्या करना, तीनों लोकोंका सारा जड़ पदार्थ सब मुझे तो एक है उसमें मेरा पराया क्या खोजा जावे। सब ही जड़ है, भिन्न है। मैं तो ध्रुव एक चैतन्यस्वभावमात्र हूं, इस मेरे का अन्य कोई साथी नहीं है। यही यही है, यही साथी है। साथी भी क्या, यह अद्वैतमात्र है।

यह मनुष्यभव असमानजातीय द्रव्यपर्याय है। जीव प्रदेश व पुद्गलाणुवोंके समूहमें यह बद्ध पर्याय है। फिर भी प्रत्येक पदार्थका सत्त्य उसका उसमें ही है। यह मनुष्यभव भी कितना दुर्लभ है। यह जीव एक चेतन पदार्थ है इसका जैसा परिणाम होता है यह वैसी सृष्टि बनाता रहता है। मनुष्यभवसे कीट, स्थावर, निगोद भी होजाना साधारण सी बात है। यह जीव यदि कीटभवमें हो तो यहांके मनुष्योंको प्राप्त वैभव उसके लिये क्या, और यदि यह मनुष्य ही कीट बन गया तो उसके लिये यहां का वैभव क्या। यह संसार है, परिवर्तनशील है, यहांका समागम कुछ भी हितरूप नहीं है। योग्य समागम पाया तो इसका लाभ अधिकाधिक धर्मसंपादन कर लेना है।

अनाद्यनन्त अहेतुक चैतन्यस्वभावकी दृष्टि, आश्रय धर्म है। वास्तविक धर्मका पालन करते हुए प्रसन्नता बढ़ा लेना चाहिये। यही

सर्वोपरि पुरुषार्थ है। जब अपनी ही एक परिणति दूसरे क्षणमें साथ नहीं देती, मिट जाती है तो बतावो, जगतमें फिर किसका साथ या मोह हितरूप होगा। गृहस्थजीवनमें यदि योग्य परिवारका संग मिला है तो जल्दी आत्मज्ञान व संयमकी बात कर लो। जितना धर्मभावका ग्रहण हो जायगा वही इस जीवकी सच्ची पूंजी है।

बाह्य पदार्थोंके भी ज्ञाता द्रष्टा रहो, अपने परिणमनोंके भी ज्ञाता द्रष्टा रहो। स्वभावकी दृष्टिमें तो ज्ञाता द्रष्टा होना ही पड़ता है।

यह तो संसार है, कुछ हितको आये, फिर अचानक चले भी जाना है। इस बीच यदि आत्महितमार्ग पा लेवे तो वही उत्तम काम है, शेष सब इन्द्रजाल है।

ॐ शुद्धं चिदस्मि। ॐ शुद्धं चिदस्मि मैं सर्व पदार्थोंसे अत्यन्त न्यारा शुद्ध पदार्थ हूं और चूंकि मेरा कोई भी परिणमन दूसरे क्षण नहीं ठहरता तथा मैं स्वयं अनाद्यनन्त एक चैतन्यस्वभावमात्र हूं। इस निज तत्त्वकी उपासनाका चमत्कार अद्भुत और अमोघ है। अपनी सब होन-हारोंका फैसला इस दरबारमें है। यदि अनाद्यनन्त, अहेतुक, स्वतः सिद्ध, अखण्ड, चैतन्यस्वभावकी उपासना में, अभेद उपासनामें उपयोग उपयुक्त है तो इस चैतन्यस्वभावके अविरुद्ध पर्यायोंका निर्माण होता रहेगा। यदि निज परम पारिणामिकभावकी उपासनासे च्युत होकर किसी पर्यायमें ही उपयुक्त रहे, किसी विकारमें ही उपयुक्त रहे, कल्पनामें किसी बाह्यपदार्थमें ही उपयुक्त रहे तो विषम पर्यायोंका निर्माण होना उसका परिणाम है। इस ब्रह्मत्वके मर्मको न पहिचाननेके कारण कल्याण व संसार दोनोंके बाबत अनेकों कल्पनायें उठती रहती हैं। कहनेका कुछ नहीं उठता, करनेका फल अवश्य मिलता है।

शान्ति प्राप्त करनेके लिये किसी भी पर पदार्थकी अपेक्षा नहीं करनी बल्कि पर पदार्थ की अपेक्षा करने में अशान्ति है। आत्मा स्वयं शान्त स्वभावी है। यदि यह स्वयं रह जाय अर्थात किसी भी परभावको उपयोग में न बसाये तो परमपद इसके पास ही है।

मैं सबसे न्यारा एक चेतन पदार्थ हूं, जैसा मैं हूं तैसे सब हैं, जैसे सब हैं तैसा मैं हूं। मेरा कोई नाम नहीं है। अन्य आत्माओंसे विलक्षण कोई मेरा लक्षण नहीं है। नाम धराकर, नाम सोचकर मुफ्त ही मारा जाता हूं। ऐसी उपासना कर कि उपयोगसे सबमें घुल मिल जावे। बूंद समुद्रमें रहे तो उसकी रक्षा है, समुद्रसे बाहर रहकर बूंद अपना गुमान दिखावे तो उसका फल बूंद का सूख जाना है।

जिनशासन आत्मशासन है। जिनशासनसे शासित कोई आत्मा हो जाय तो वह त्रिलोकीनाथ बन जाता है। धन्य यह शासन जो शासितको नाथ बना दे। वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान हुआ कि आत्मा कृतार्थ हुआ।

अध्यात्म भावनात्रय—

(१) मैं इतर सर्व अनन्तानन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्गल आदि समस्त पर द्रव्यों से अत्यन्त भिन्न हूं ऐसा शुद्ध हूं।

(२) चूंकि मेरा कोई भी परिणमन दूसरे क्षण भी साथ नहीं दे सकता मुझमें ठहर नहीं सकता अतः मैं निजमें उठने वाले परिणमनोंसे भी न्यारा हूं, ध्रुव एक चैतन्यस्वरूप हूं, ऐसा शुद्ध हूं।

(३) जैसा मैं हूं तैसे सब हैं, जैसे सब हैं तैसा मैं हूं, मैं अन्य सब चेतन पदार्थोंसे कुछ भी विलक्षण नहीं हूं। अतः न मेरा नाम है और न नाम धराये भी धराया जा सकता, मैं नाम रहित हूं ऐसा शुद्ध हूं। ॐ शुद्धं चिदस्मि। ॐ शुद्धं शुद्धं चिदस्मि। ॐ शुद्धं शुद्धं शुद्धं चिदस्मि।

सद्भावनात्रय—

(१) सब जीवोंके सुखी रहनेकी भावना रखना।

(२) हितकारी, परिमित, छल रहित, अभयप्रद प्रिय बचन बोलना।

(३) जब तक देहमें बल है, आलस्य न करके गुणीजनों न दुःखीजनों की प्रेम पूर्वक सेवा करना।

जीवनोद्धार यत्नत्रय—

(१) जिस किसीसे हितकारिणी विद्या प्राप्त हो सकती हो विद्या प्राप्त करनेका अधिक यत्न करना।

(२) गुरु, बड़े जन, मित्रजन एवं अन्य सभीका सरलतासहित यथोचित विनय करना।

(३) क्षणिक विषयसुखमें न लुभा कर, देहबल व स्वास्थ्यके आधारभूत वीर्यकी रक्षाके लक्ष्यसे तथा आत्मीय समृद्धिके लक्ष्यसे ब्रह्मचर्यका मन वचन कायसे पालन करना।

लक्षित कार्य प्रगतियत्नत्रय—

(१) दूसरेकी निन्दा नहीं करना।

(२) किसी व्यक्तिका दिल देखकर, उसका दिल न दुखाकर उसमें योग्यसाधारण सहयोग लेना।

(३) जिसमें दूसरोंको लाभ पहुँचे उस प्रकार सेवा कार्य करना।

आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्। इस बातके पालनसे यह जीवन सुखी तो रहता है किन्तु आहार व व्यवहारमें लज्जा किस प्रकार की छोड़ना चाहिये इसपर विवेक करना चाहिये। जब आहार करनेसे स्वास्थ्य खराब होता हो तब लज्जा छोड़कर आहारका त्याग कर देना चाहिये। जिस चीजके खानेसे स्वास्थ्य खराब हो या नियम भंग होता हो तो लज्जा छोड़कर उस चीजको साफ मना कर देना चाहिये। इस प्रकार की लज्जाका त्याग तो आहारके सम्बन्धमें है। जिस समागमके हितसे धर्मके परिणाममें शिथिलता होती हो उस समागम व व्यवहारको छोड़ देनेकी बात स्पष्ट व्यक्त कर देना चाहिये व छोड़ देना चाहिये। वहां लज्जा, लिहाज व संकोच करनेसे आत्मघात ही परिणाम निकलेगा। ऐसी लज्जाका त्याग व्यवहारिक सम्बन्धमें है।

यह संसार असार है, इसमें नाम बना जानेका अभिप्राय खोटेसे भी खोटा अभिप्राय है लेकिन दुनियांके कामोंमें भंग पड़ी है। इस व्यवहार को कोई बुरा नहीं समझता। जैसेकि हिंसा कुशील आदि पापोंमें भौंएं सिकोड़ी जाती हैं वैसे इस नामकी मूढ़ता पर कोई भौंएं सिकोड़कर ग्लानि प्रदर्शित नहीं करता।

अन्तरमें देखो—अनाद्यनन्त, अखण्ड, चैतन्यस्वावमात्र निज तत्त्वके

उपयोगमें विशुद्ध आनन्दका प्रवाह बह उठता है। निज स्वभावके उपयोगमें आकुलता नहीं होती क्योंकि निजस्वभाव ध्रुव, परिणामिकभावरूप एवं निजमें अभिन्न है। अध्रुव, पर्याय एवं परकी दृष्टिमें आकुलता है। भेद-विज्ञानका उद्देश्य यही है कि यह आत्मा मात्र स्वयंका ज्ञान करले और स्वयंसे विलक्षण जो अध्रुव, पर्याय, परभाव व पर पदार्थ हैं उनसे दृष्टि हटा ले।

आत्मा तो आनन्दका पिण्ड है ही। शुद्ध सहज आनन्दात्मक रूपमें स्वको न देखे तो यह बात प्राकृतिक है हीं कि आनन्दगुणका विकार ही व्यक्त हो। जिन्हें आनन्दका विकास करना है वे बाह्यमें किसी जगह दृष्टि न देकर एक मात्र शुद्ध चैतन्यस्वभावमय निज तत्त्वकी दृष्टि, प्रतीति, रुचि एवं उपासना करें।

एक मात्र चैतन्यस्वभावके उपयोगसे रहित होकर अन्य भाव व पदार्थोंमें उपयोगको लगाना अतथ्य एवं अहित है। किसी पर पदार्थकी ओर उपयोग फसावो तो वह पर कहीं हित न कर देगा अथवा साथ न निभावेगा। अहित व असहयोगी तो पर है ही, उसकी ओर उपयोग न फसावो तो वह कुछ नहीं करता। हां परभावमें न फसनेसे लाभ सारा है और वह है अनुपम लाभ। वह है शुद्ध ज्ञानानन्दका लाभ।

दुनियांके मायामूर्तियोंसे तुम क्या आशा रखते हो, ये तो स्वयं इन्द्र-जाल है, अशरण हैं। जो नजर आते हैं उनसे तुम्हें क्या लाभ मिलेगा, आनन्द तो निज ज्ञानकलाके आधीन है। बाह्यसे वस्तुतः निजमें कुछ होता ही नहीं। बाह्यको विषय बनाकर जो संकल्प विकल्प बनाये जाते हैं उन संकल्प विकल्पोंसे ही आत्मा आकुलित है; परेशान है। ये संकल्प विकल्प सम्यक् श्रधानसे सुगमतया छूट ही जाते हैं। जब तक पर पदार्थके बारेमें यह भ्रम है कि पर मेरा है, परसे मुझे सुख है, परसे मेरी प्रतिष्ठा है परसे मेरा कल्याण है इत्यादि, तब तक उपयोगका परमें फंसाव है अर्थात् परको विषय बनाकर संकल्प विकल्पोंका निर्माण होता है। जब स्वरूपा-स्तित्वके निर्णयसे यह सुप्रतीत हो जाता है कि मैं तो अपने प्रदेशास्तित्व

मात्र हूं, चैतन्यस्वभावमय हूं, इस मेरेका कोई काम किसी पर पदार्थमें नहीं होता, त्रिकाल भी मेरा कुछ परमें नहीं है और न परका कुछ मुझमें है, मैं मात्र अपने परिणमनसे परिणम जाऊं इतना ही कार्य मेरा होता है मैं किसी भी पर द्रव्यको न परिणमाता हूं न करता हूं और अतएव मैं न पर द्रव्यका स्वामी हूं, न अधिकारी हूं, सर्व सर्व स्वतन्त्र स्वतन्त्र स्वतः सिद्ध है। ऐसा निर्णय हो जाने पर यह उपयोग परसे परांमुख हो जाता है और इसी कारण संकल्प विकल्पोंका निर्माण न होकर स्वसंवेदन तथा अनाकुलताका अनुभव होता है। इस जीवको और क्या चाहिये यही सहज आनन्द है। इसके लिये सम्यक् निर्णयकी अत्यावश्यक्तता है।

स्वका सत्य अनुभव ही अमृत है। इस अमृतके पानसे ही अमरता संभव है। कथावोंमें कहीं आता है कि उसने अमृत फल पाया और किसी अन्यको दे दिया यह सब या तो अलंकार हैं या झूट बात है अथवा बढ़ाकर बात है। अलंकार तो ऐसा हो सकता है कि किसी संत पुरुषने आत्महितोपदेश दिया और उसे खा नहीं सका सो अन्यत्र फेंक दिया। यदि कथाओंमें रागी मोही भोगी जन्तुओंके लिये (जिनकी मर कर गति भी ठीक नसीं हुई) आवे कि उसने अमर फल खाया तो वह सरासर झूठ है। अमरफल खाया व अमर हो गया तो उससे मिला हो, ऐसे अमर हो जानेकी बातकी कल्पना पागलपन है।

हां, स्वका सत्य अनुभव अवश्य अमृत है व अमरफल है। इसके खानेपर अर्थात् जिनको निजको निज पहुँचान कर निजके उन्मुख ही होने पर वह अमर होजाता है। यहां जीवके अमर होनेकी बात कही गई है; शरीरमें बने रहनेकी बात नहीं कही गई। जीव तो अमर है ही किन्तु पर्याय बुद्धि होनेसे मूढ़ात्मा अपनेमें मरणकी कल्पना करता है, वह यदि स्वका सत्य अनुभव करले तो मरणकी कल्पना समाप्त हो जायगी। उसके लिये तो शाश्वत निज सदैव उपयोगमें एकरूपसे रह रहा है। उसने अपने आपको आनन्दकन्दको अपने आपमें पा लिया। वह अमर है और अमर की दृष्टि वाला भी अमर है। देहसे देहान्तरका जबतक बदलना चलता है

चले इससे क्या हानि। यों तो यहां भी अनेकों लोग मकानसे मकानान्तर बदलते रहते हैं।

आत्मा आनन्दामृतनिधान है। इसमें क्या कमी है। परिपूर्ण द्रव्य ही तो यह है। जो है वह सब परिपूर्ण है। पुद्गल द्रव्य परिपूर्ण है उसे क्या करनेको पड़ा वह कहां कष्टमें है। वह एक द्रव्य है, परिपूर्ण है, उस की पर्यायें होती हैं, कुछ भी होती है, होती रहो। द्रव्य तो परिपूर्ण है, एक अवस्था छोड़कर दूसरी अवस्थामें आता रहता है। आत्मद्रव्य परिपूर्ण है, उसे क्या करनेको पड़ा है, वह कहां कष्टमें है। वह तो एकद्रव्य है, परिपूर्ण है। उसकी पर्यायें होती हैं, कुछ भी होती हैं, होती रहो। द्रव्य तो परिपूर्ण है, एक अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्थामें आता रहता है। इससे क्या हानि ! बस हानि तो मात्र संकल्प विकल्प कर लेने से ही है।

बाह्य पदार्थके संयोग वियोगसे जो मनुष्य अपनी लाभ हानिका माप करते हैं वे इस संसारमें कभी सुखी नहीं हो सकते। जो मनुष्य विकल्प व निर्विकल्पभावसे अपनी हानि लाभका माप करते हैं वे परम लाभके पात्र हैं और शीघ्र ही परमविभूतिके अधिकारी होंगे।

जो पुरुष दूसरोंके दोष देखनेमें लगते हैं उनके आत्मामें गुणका स्वभावविकास कैसे हो सकता है। हे आत्मन् ! किसी दूसरेसे तुम बंधे तो हो नहीं, दूसरेके आधारपर तुम्हारी परिणति तो है नहीं फिर क्यों विचित्र ज्ञेयको उपयोगमें बसाकर उपयोगको विचित्रित कर रहे हो जो करना हो करो किन्तु यह ध्यानमें रखो अपने कियेका फल केवल अपनेको भोगना पड़ता है।

स्वाध्याय आदि किसी काममें न लगे हों याने खाली बैठे हों तो वहां भी खाली नहीं रहना चाहिये। तब क्या करना चाहिये ?— णमोकार मंत्र जपते रहना चाहिये, बीच बीचमें कई बार "ॐ शुद्धं चिदस्मि" यह मनन करना चाहिये।

कामविजयभावना परपुरुष व पर स्त्री प्रसंगसे नरकोंमें जाकर तप्त

लोहेकी पुतलीसे लिपटाया जाता है। काम विकारके भावसे मनोबल व कायबल नष्ट होता है और परभवमें हीन व प्रभावहीन पर्यायोंमें जन्म लेना पड़ता है। वीर्यक्षयसे शरीर शक्तिहीन कान्तिहीन व प्रभावहीन हो जाता है जिससे फिर आ जीवन अनेक विपत्तियां भोगना पड़ती हैं। ये नर नारियोंके शरीर भीतरसे बाहर सर्वत्र मल ही मलसे भरे हुए हैं। एक बार भी किसीसे कामविषयक वार्ता करनेपर आजीवन उसके आधीन रहनेका परिणाम हो जाता है जिससे पतन ही पतन होता रहता है।

क्रोधविजयभावना— क्रोधभाव होनेसे बुद्धि सही काम नहीं करती जिससे ऐसे अनुचित व्यवहार हो जाते हैं जिनके कारण पीछे पछताना और नीचा देखना ही पड़ता है। दूसरेकी परिणतिका हम कर ही क्या सकते हैं फिर क्रोध करके केवल अपना ही तो बिगाड़ किया जाता है। किसी जड़ अध्रुव चीजकी तृष्णामें प्रतिकूलपर क्रोध उत्पन्न होता है सो अध्रुवके वियोगसे तो हानि होती नहीं, किन्तु क्रोध परिणामसे वर्तमान व आगामी दोनों कालोंमें व लौकिक अलौकिक दोनों प्रकारकी हानियां हैं। क्रोध आत्माका स्वभावभाव नहीं किन्तु औपाधिक विकारभाव है इसकी प्रीतिका फल नरक गति व तिर्यञ्चगति है। तू अपने स्वभावकी दृष्टि न करके अपने पर अनन्त क्रोध करता हुआ अपनी हत्या कर रहा है उसे तो देखता नहीं व्यर्थं बाह्यकी दृष्टि से क्या लाभ है।

मानविजयभावना— जिनको जचानेके लिये मानभाव किया जाता है वे सब मायास्वरूप एवं अध्रुव हैं उनसे क्या मिल जायगा। तू अपने स्वभावकी दृष्टि न करके आत्महत्या कर रहा है उस हानिका तो अफसोस नहीं करता और अनित्य समागममें अनित्य असार इज्जतकी चाह करके मंदान्ध बनना क्या यह अव्वल दर्जेकी मूर्खता नहीं है। इन्द्र, चक्रवर्ती सदृश वैभवशाली भी यहां टिक नहीं सके तू किस बात पर झूठा अहङ्कार कर रहा है। नर अनेकोंको छोटा देखते और अनेकों उसे छोटा देखते इसी तरह मानशिखरस्थ नर भले ही औरों को छोटा देखे किन्तु मानशिखरस्थको सभी तुच्छ देखते हैं ऐसे मानसे हानि ही तो है। जिसको

आप लक्ष्यमें लेकर मान कर रहा है वह तू नहीं है वह तो क्षणिक पर्याय है तू तो अबन्ध स्वभावी, अविकार स्वभावी शुद्ध चेतनमात्र है।

मायाविजयभावना— निज जड़ तत्त्वोंके लाभके लक्ष्यसे माया की जाती है उनसे आत्माका रञ्च भी लाभ नहीं है प्रत्युत अपनी हत्या ही है। माया एक शल्य है इसके होते हुए आत्माको शुद्ध आनन्दके स्वरूपकी दृष्टि तक भी प्राप्त नहीं हो सकती है आनन्द तो कोसों दूर रहता है। मायाचारी व्यक्ति लोकोंके लिये किसी भी समय विश्वासके योग्य नहीं रहता वह अति निन्द्य हो जाता है और मायाचारीको लाभ भी कुछ नहीं होता। निगोद भवके दुःखोंकी प्राप्ति मायाचारका परिणाम है, इस जीवनके कल्पित लाभके पीछे मायाचार करके अपना भविष्य बिगाड़ लेना बुद्धिमानी नहीं है। मायाचारी व्यक्ति परमार्थमें तो ठगाया जाता ही है किन्तु कल्पित, लौकिक लाभमें भी अन्तमें ठगाया जाता है, तथा दूसरेको ठगनेमें भी खुदकी ही ठगाई व बिगाड़ है।

लोभविजयभावना—एक निज आत्माका सर्वस्व निज आत्मा ही है अन्य सर्व तो अत्यन्त भिन्न है उनसे आत्मामें एक परमाणुमात्र भी लाभ नहीं हो सकता फिर लोभ परिणाम निरर्थक ही है। लोभसे पुण्य नष्ट होता है पाप बढ़ता है जिससे दरिद्रता ही हाथ आती है अतः लोभ करना कल्पित सुखका भी उल्टा उपाय है। सर्व पदार्थ स्वतन्त्र स्वतन्त्र अस्तित्व वाले हैं उनमेंसे किसीके भी प्रति यह सोचना कि यह मेरे अधिकारमें रहे। ऐसी उद्दण्डताका हक तो इस आत्माको मिला नहीं फिर भी यदि उद्दण्डता ही की जायगी तो अनाधिकार चेष्टाका फल पतन ही है, ऐसा निर्णय है। बाह्य वस्तुसे सुख नहीं है सुख तो ज्ञानभावसे है जैसा निर्मल ज्ञान होगा वैसा ही उत्तम आनन्द होगा अतः ज्ञानकी निर्मलताके लिये निजको परसे अलिप्त स्वभावमें देखे। इन बाह्य पदार्थोंमें रहना तो कुछ साथ है ही नहीं इनसे जितनी उदारता बर्त लोगे उतना ही आत्म संस्कारके कारण अतुल ऋद्धि वाले होओगे।

स्वास्थ्य तो चैन्यमात्र स्वमें उपयोग द्वारा स्थित होनेको कहते हैं

और धर्मसाधन भी चैतन्यमात्र धर्मकी उपयोग द्वारा साधनाको कहते हैं स्वास्थ्य व धर्मसाधन हो जानेमें इस भवकी सफलता है। जब तक निज सहज चैतन्यस्वभाव का परिचय नहीं होता तब तक जो भी यत्न बने वे सब विडम्बनायें हैं। जीवकी अनादिसे चली आ रही यात्रामें आज कल अपनी मनुष्यभवकी यात्रा चल रही है। यह भी यात्रा अब यथा शीघ्र पूर्ण होने वाली है। इसके बाद नवीन यात्रा शुरू होगी। इसकी यात्रा तब तक चलती रहेगी जबतक अपने सही घरमें यह न आजावेगा। यात्रा भी एक सफर अथवा Suffer है, क्लेश है। सभी दुखोंसे बचनेका उपाय चैतन्यशक्तिमात्र स्व को स्वरूपसे जान जाना है। यह उपाय जब करें तभी भला है। अभी करलें तो अबसे ही भला है। इसके लिये विलम्ब तो यों नहीं करना चाहिये कि पता नहीं इस यात्राके बाद हम भला उपाय करनेके पात्र भी रह सकेंगे या नहीं, क्योंकि इस अवसरमें न चेते तो यह अधिक संभव है कि भला उपाय करनेके पात्र ही नहीं रह सकेंगे।

यह धर्मसाधन अति सुगम है। गृहमें रहकर भी सुगम है, वनमें रहकर भी सुगम है। अपना सर्व बल इस ओर ढलना चाहिये।

निज जगत यह आत्मा ही है। इसमें नवरसका सञ्चार यथा समय होता रहता है। वे नवरस ये हैं— (१) शृङ्गार, (२) वीर, (३) करुणा, (४) हास्य, (५) रौद्र, (६) वीभत्स, (७) अद्भुत, (८) भयानक, (९) शान्त।

निश्चय से ये नवरस निजरसरूप हैं। व्यवहारसे नाटकरसोंमें परिगणित हैं वस्तुतः बाह्य अर्थमें आत्माका रसभाव नहीं है परन्तु मनुष्योंमें जो चेष्टायें होती हैं उनके सन्निधानमें आत्मा स्वयं उस रूप परिणाम करता है, वहां जिस रस रूप अपनेमें अनुभव करता है उस रसका परमें उपचार होता है। इस कारण निश्चय से निजरस रस है और व्यवहारसे नाटकरस रस है। क्योंकि रस शब्दका अर्थ है—रस्यते आस्वाद्यते यः स रसः, जो स्वादा जावे वह रस है। आत्मा

के स्वादमें मात्र ज्ञानका अनुभव होता है अतः वस्तुतः निजरस ही आत्माके लिये रस है, परन्तु जब वह ज्ञानानुभूति ज्ञानको ज्ञानरूप से वेदन न करने पर ज्ञेयमें रमती है तो वह रस परको निमित्त करके नव जातियोंमें परिणत होता है, इसके निमित्त उसके अनुकूल चेष्टासे परिणत मात्र पुरुष हैं। सो जिनको निमित्त करके नवरस रूपमें परिणमन हुआ उनके विषयको व्यवहारसे रस कहा गया है।

निश्चयसे ज्ञानभूषणका विलास ही शृङ्गाररस है। व्यवहारतः कामादि भावके उत्पादक वचन आभूषणोंका विलास शृङ्गार रस है। निश्चियतः भावकर्म व तन्निमित्तक द्रव्य कर्मोंकी निर्जराका प्रबल उद्यम ही वीररस है, व्यवहारतः लौकिक वीरताका भाव वीररस है। निश्चयतः अपने आत्मतत्वकी तरह समस्त जीवोंके स्वरूपके मननके साथ विभावपरिणमनका अफसोस होना ही करूणारस है, व्यवहारतः क्षुधादि दुःखोंसे पीड़ित प्राणियोंको देख कर दयाभाव होना करूणारस है। निश्चयतः स्वानुभवके लिये उत्साह व प्रमोद होना हास्यरस है, व्यवहारतः भले बुरे प्रकरणोंमें खुशी व मजाकसे हंसना हास्यरस है। निश्चयतः कर्मोंके विनाशका हेतुभूत परिणाम ही रोद्ररस है, व्यवहारतः क्रूरताका भाव रोद्ररस है। निश्चयसे शरीर व आस्रवभावकी अशुचिताका चिन्तवन वीभत्स रस है, व्यवहारतः कुरितियोंसे करनेका परिणाम विभत्सरस है। निश्चयतः आत्माकी अचिन्त्य शक्तियोंकी भावनाका परिणाम अद्भुतरस है, व्यवहारतः लौकिक आश्चर्योंको देखकर आश्चर्यान्वित होनेका परिणाम अद्भुतरस है। निश्चयतः जन्मादिक दुःखोंके चिन्तवनसे होने वाला संवेग परिणाम भयानकरस है, व्यवहारतः भयका परिणाम भयानकरस है। निश्चयतः सर्व क्षोभोंसे रहित समतामय परिणाम शांतरस है, व्यवहारतः किसी प्रकारसे क्रोध न करके गम्भीर रहना शांतरस है।

शांतिका आनन्दसे सम्बन्ध है। शान्तिका मालिक आनन्द है, आनन्दकी मालकिन शान्ति है। शान्तिका पिता विवेक है, शान्तिकी

माता समता है। शान्तिके भाई सम्यक्त्व, ज्ञान व चारित्र हैं। मैत्री दया व क्षमा शांति की बहिनें हैं।

ॐ नमः शान्ताय, ॐ नमः शान्त्यै, ॐ नमः शान्तिकराय।

अनादिकालसे परिभ्रमण करते हुए आजकल अपन लोग अच्छे स्थानमें आ गये हैं। कितने ही जीव तो ऐसे हैं जो कुछ सोच ही नहीं सकते (असंज्ञी)। कितने ही जीव ऐसे हैं जो सोच तो सकते हैं किन्तु बता कुछ नहीं सकते (संज्ञीतिर्यञ्च)। उन सबसे तो अपनी स्थिति मजबूत है। ऐसी दुर्लभ बात भी पाकर यदि साधारणजनोंकी भांति विषय कषायमें ही जीवन गवां दिया तो कितनी हानि है–पता नहीं फिर संज्ञी पर्याय मिले न मिले कब मिले। इस अवसरका पूर्ण लाभ तो ज्ञानोपयोग में ही है।

ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ। ॐ ॐ ॐ ॐ, ॐ ॐ ॐ।

प्रेमका बन्धन व इज्जतकी चाहका बन्धन भीतरमें न रहे तो दूसरों का प्रेम भी मिलता व इज्जत भी स्थायी रहती व शान्ति तो मिलती ही है। इसके लिये औषधि है, भेद विज्ञान।

सबसे न्यारा हूं, पर्यायोंसे भी परे हूं सर्वसाधारणस्वरुपमें घुल मिल गया हूं।

पर द्रव्यसे चाहे वह अचेतन हो या चेतन, निजको कुछ नहीं मिलना है। सतत इस निज आत्मतत्त्व के समीप रहो इस हीके सन्मुख उपयोगी रहो। यही सत्यशरण है। इसके ही समीप बसनेसे सर्व संकट दूर होते हैं। इसका शरण त्यागकर परमें कहीं शरण ढूंडा व परके सन्मुख उपयोग करने वाले बने तो विडम्बना विपदा व अशांति ही पावोगे। इसका कारण यह है कि पर पदार्थ भी स्वतन्त्र सत्तावान् है वह तेरे अधीन तो रह ही नहीं सकता जब उसे जैसा परिणमना हो, रहना हो परिणमेगा, रहेगा, तुमने उपयोग उसे सौंपा तो उसका फल आकुलता ही तो है।

हे प्रिय आत्मन्! इस स्वातन्त्र्य धर्मको जानकर अब सर्व अज्ञान

विकल्प दूर कर एक ही इस शिवमार्गपर आवो। एक इस निज सहज चेतन्यतत्त्वके सन्मुख उपयोगी रहो। किसी के लिये तुम कुछ न करते हो और न कर सकते हो, मात्र अपना विकल्परूप परिणमन करते हो। किसके लिये क्या करना। सब अपना-अपना होनहार साथ लिये हैं, तुम भी अपना होनहार साथ लिये हो विकल्प विपदामें क्यों ग्रस्त हो। विकल्प धूलको ज्ञान जलसे धोकर उपयोगभूमिको स्वच्छ बनाओ।

ज्ञान चेष्टाके अतिरिक्त सारीही चेष्टायें तो असार हैं। असार इस लिये हैं कि ये निष्फल हैं अर्थात जिस लक्ष्यको लेकर ये चेष्टायें होती हैं लक्ष्यभूत पर पदार्थको ये छूती तक भी नहीं और तो कहानी ही क्या कही जावे। असारताकी दूसरी बात यह है कि आत्मामें जो उपाधिवश विकल्प चेष्टायें होती हैं वे दूसरे क्षणभी तो नहीं ठहरतीं आकुलता उत्पन्न करके व भावी आकलताओंका बीज बो करके मिट जाती हैं। हे आत्मन् ! जब निजकी ये चेष्टायें भी विश्वासके योग्य नहीं तो इन चेष्टाओंका आश्रयभूत व निमित्तभूत बाह्य अर्थ कैसे विश्वास्य हो सकता है। विकल्पोंकी गांठ तोड़ो और कृतार्थ हो लो।

शिथिलता शिथिलताका कारण होती जाती है। दृढ़ता दृढताका कारण होती जाती है। थोड़ी भी शिथिलता भयंकर परिणामका कारण बन सकती है। अतः शिथिलताका होना एक खतरा है।

आत्मा ही आत्माका शरण है। त्रैकालिक शुद्ध चैतन्यशक्तिमय भगवान आत्माको जाने बिना संसारमें अब तक भटकना हुआ है। यह भगवान ज्ञान व आनन्दका पुञ्ज है।

जीवका उद्धार ज्ञानसे प्रारब्ध होता है, ज्ञानसे संचरित होता है ज्ञान में परिपूर्ण होता है। आत्माका माध्यम ज्ञान है, आत्माका आरम्भ ज्ञान है, आत्माकी परिपूर्णता ज्ञान है, आत्माका अवशेष भी ज्ञान है।

आत्मासे बड़ा ज्ञान है। ज्ञानसे बड़ा आत्मा है। जहां आत्मा भी नहीं पहुँच सकता वहां ज्ञान पहुँच जाता है। ज्ञान तो आत्मा है ही

किन्तु दर्शन, चारित्र आदि शक्तियां भी आत्मा है। आत्मामें सब शक्तियां हैं। सब शक्तियोंमें आत्मा है। शक्तियोंसे जुदा आत्मा नहीं। आत्मा से जुदी शक्तियां नहीं।

सनातन, शुद्ध, बुद्ध, आर्यसेवित, स्वतःसिद्ध, ईशान, अलय, पार्श्वो अखण्ड, अविकार परम पिता, परमेश्वर परमब्रह्मके सत्प्रसादसे आत्म सृष्टि निर्मल होओ। ॐ नमः श्रीमज्जिनेन्द्राय।

आत्माका ध्रुव एक निज आत्मा ही है। सम्यग्ज्ञानके प्रमादसे आत्माके यथार्थ स्वरूप पर दृष्टि देकर प्रसन्नतासे समयका सदुपयोग करना सत्य व्यवसाय है। वास्तवमें दुःख कुछ है ही नहीं। दुःखको तो बनाने वाली ममता है। ममताके होते हुए कोई चाहे कि शान्ति हो जावे सो यह असंभव बात है। जब जो होना होगा सो होगा किन्तु सम्यग्ज्ञानके उपयोगसे वर्तमानमें शान्ति पा लेना बड़ा पुरुषार्थ है, इससे भविष्यमें भी सब अच्छा ही होता है।

महेश प्रेस, मेरठ।